अंक २

फर्वरि १९५१

मूल्य ८ आना

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष— स्वाध्याय-मण्डल

पौष २००७

[फरवरी १९५१]

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

स्वत्व मूल्य मूलधन आदिके स्वरूपका लौकिकत्व

(लेखक— श्री ईश्वरचन्द्र शर्मा मौद्गल्य, आर्यसमाज, काकड़वाडी, बंबई ४)

(२)

(गताङ्कसे आगे)

लोगोंका व्यवहार पण्य वस्तुओंके लेन-देनसे चलता है। लेन देनके रुकते ही सब कार्य रुक जाता है। न्यायके अनुकूल व्यवहार चलानेके लिये स्मृतियोंके वा ब्राह्मण कल्पसूत्र आदिके वाक्योंकी ओर नहीं देखा जाता। निस्संदेह सारा व्यवहार लोक सिद्ध है। पर लेन-देनके नियमोंका वर्णन कल्पसूत्र स्मृति आदिमें भी है। शास्त्रके विचारक कह हैं शास्त्र उन वस्तुओंका निरूपण करता है जिनको प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पर आश्रित अनुमान आदि बतानेमें असमर्थ है। इस प्रकारके अर्थ अलौकिक कहलाते हैं। अलौकिक विषयमें शास्त्रके अनुसार चलना चाहिये लौकिक विषयमें भी शास्त्रका विरोध अनुचित है। शास्त्रके श्रद्धालु पुराने पूर्व मीमांसाके आचार्योंके अनुसार शास्त्रकी खींची रेखासे इधर उधर न जाना चाहिये। दूसरी ओर समाजवादी शास्त्रोंकी पुरानी बातोंको अज्ञानमूलक अप्रमाण समझते हैं। इतना ध्यान रहे शास्त्रमें उल्लेख होने भरसे कोई वस्तु अलौकिक नहीं हो जाती। लौकिक वस्तुओंका भी शास्त्र वर्णन करता है और लौकिक समझ कर करता है। शास्त्र लौकिक वस्तुओंके जिन नियमोंका प्रतिपादन करता है वे भी लोक सिद्ध होते हैं।

शास्त्रकार अपने कालमें जिन नियमोंका प्रचलन देखते है उनका वर्णन कर देते हैं। लोग बदलती परिस्थितियोंके अनुसार व्यवहारके नियमोंको बदलते रहते हैं। पहलेके समान आज भी लोग प्रत्यक्ष और अनुमानके बलपर बदल सकते हैं। वस्तुतः अलौकिक भी मूलमें लौकिक होते हैं। शास्त्रकी चिन्ता करनेवाले उनका स्वरूप कह सकते हैं। उनका समझना साधारण लोगोंके बसका नहीं होता इस लिये उनको अलौकिक कह देते हैं। प्रत्यक्ष और तर्कके विरुद्ध वस्तुओंको अलौकिक कहकर शास्त्र उपदेश नहीं करता। विषयान्तर हो जायेगा इसलिये अधिक इस विषयमें न कहूंगा। समाजवाद आर्थिक तत्त्वोंका प्रतिपादन प्रत्यक्ष और तर्कके बलपर करता है। शास्त्र इस विषयमें विरोधी नहीं है। पूर्व मीमांसा स्वत्वके लौकिक होनेका निर्णय करता है।

आचार्य शबर स्वामी ने + लिप्सा सूत्रकी तीन व्याख्यायें की हैं। तीसरी व्याख्यामें कहा है गौतमके मतमें दाय, क्रय, संविभाग, परिग्रह, और अधिगम स्वत्वके कारण हैं। स्वामीके संबन्धी होनेसे जो वस्तु मिले उसका नाम दाय है। क्रय प्रसिद्ध है। संविभागका अर्थ है बटवारा। इसके कारण पैतृक अथवा वंश द्वारा प्राप्त संपत्तिके एक वा एकसे अधिक व्यक्ति स्वामी बन जाते हैं। जिन वस्तुओंका पहले कोई स्वामी नहीं उनको लेनेको परिग्रह कहते हैं। इससे भी स्वामी हो जाता है। वनके जिस काष्ठ घास आदि पर किसीका अधिकार नहीं है उसका स्वीकार परिग्रह है। जिसके स्वामीका ज्ञान न हो उस घास आदिका मिल जाना अधिगम है। इन कारणोंसे कोई भी मनुष्य वस्तुओंका स्वामी हो सकता है। कुछ असाधारण कारण है जिनके द्वारा प्रत्येक मनुष्य स्वामी नहीं बनता। वे भिन्न भिन्न वर्णोंके लिये नियत हैं। ब्राह्मण दान लेकर स्वामी बन सकता है दान लेनेका अधिकार क्षत्रिय वैश्य वा शूद्रको नहीं है। युद्धमें विजयसे जो मिले उस पर क्षत्रियको अधिकार है। खेती गोपालन आदिसे जो मिले उसका स्वामी वैश्य है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकी सेवादिसे जो प्राप्त हो उस पर शूद्रका अधिकार होता है। अर्जनके ये उपाय लौकिक नहीं है। यही होता तो शास्त्रको इसके लिखनेकी आवश्यकता न थी। लोग व्यवहारसे ही सब कुछ जान सकते थे।

+ मीमांसा दर्शन भाष्य वार्तिक सहित अ० ४ पा० १, अधिक० २, सू० २१ आनन्दाश्रम प्रेस पूना।

फिर वर्णोंके लिये अर्जनके नियमोंका बनाना भी नियमोंकी अलौकिकता दिखाता है।

यदि अर्जन लौकिक होता तो कोई भी मनुष्य किसी भी उपायसे वस्तु ले सकता था। क्षत्रिय और वैश्य भी दान ले सकते थे। ब्राह्मण युद्ध करके अथवा सेवासे स्वामी बन सकता था। इसलिये द्रव्य अर्जनके ये उपाय पुरुषके लिये नहीं हैं। अर्जनके द्वारा खाने पीनेका सुख पाना इनका प्रयोजन नहीं है। ये सब यज्ञके लिये हैं। इन उपायोंसे जो धन मिलेगा उससे यज्ञ हो सकेगा। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि नियमका अतिक्रमण करनेसे पुरुषको कोई दोष न होगा। यह हुआ पूर्वपक्ष। सिद्धान्ती अर्जनको लौकिक कहता है। भूख प्यास शान्त करनेके लिये गर्मी-सर्दीसे बचनेके लिये अर्जन किया जाता है। शरीरका सुख पानेके लिये जब अर्जन करता है तब उसमें शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है। अर्जित वस्तु पुरुषको प्रसन्न करती है इसलिये पुरुषको सुख देना अर्जनका प्रयोजन है। पुरुषके अन्य कार्योंके समान यज्ञ भी एक कार्य है अतः द्रव्यका यज्ञमें भी उपयोग कर दिया जाता है। केवल यज्ञ अर्जन करनेका प्रयोजन नहीं है। अर्जनके उपाय भी पुरुषके लिये नियत हैं। पुरुष यदि इन नियमोंके अनुसार अर्जन करेगा तो उसे पाप न होगा। नियमके अतिक्रम करने पर यज्ञ हो सकेगा पर पुरुष पाप भागी होगा। ब्राह्मण खेती गोपालनादिके द्वारा धन अर्जन करके यदि यज्ञ करे तो उसमें कोई विघ्न नहीं होगा। यज्ञसे जो फल मिलता है वह मिलेगा ही पर ब्राह्मणको अवश्य इसका फल भोगना पड़ेगा। भाष्यके व्याख्याकार आचार्य कुमारिल भट्ट पक्षके पार्थ सारथि मिश्रशास्त्र दीपिकामें और गुरु पक्षके भवनाथ नय विवेकमें इस अवसर पर स्वत्वके लौकिक स्वरूपको प्रतिपादित करते हैं।

अलौकिक माननेवाले कहेंगे स्वत्व यदि लौकिक है तो शास्त्रकी महिमा नहीं रहती। प्रत्यक्ष और अनुमान लौकिक प्रमाण हैं इनसे जिस सुखके साधनका ज्ञान न हो सके उसका ज्ञान करानेके कारण शास्त्र प्रमाण होता है। लोक-सिद्ध अर्थोंका अनुवाद करनेवाला शास्त्र व्यर्थ है। पर इतने से शास्त्र हीन नहीं हो जाता। लोकमें सब कुछ है पर लोग सरलसे सब वस्तुओंके स्वरूपको ठीक ठीक नहीं समझ लेते। शास्त्रकार परिश्रम करके प्रमाणों द्वारा वस्तुओंके रूपका विवेक करते हैं। साधारण लोगोंको पदार्थ एक आकारके प्रतीत होते हैं। शास्त्रसे उनके सूक्ष्म भेद स्पष्ट होने लगते हैं। शास्त्रकारोंने प्रत्यक्ष अनुमानके आश्रयसे ज्ञान प्राप्त किया था पर सब लोग शास्त्रकारोंके समान प्रतिभाशाली नहीं होते। उनको परिश्रमसे बचानेके लिये दयालु आचार्यों ने शास्त्रकी रचना की। अनेक लोग परिश्रम करके भी उन प्रमाणों तक नहीं पहुंच पाते जिनका वर्णन शास्त्र कर चुके हैं। अनजान लोगोंको प्रमाणोंकी सहायतासे वस्तुके सूक्ष्म स्वरूप तक पहुंचा देना शास्त्रका प्रयोजन है। + वीर मित्रो-दयके कर्ता कहते हैं सब निबन्धकारोंके मतमें व्यवहारकी स्मृतियां प्रायः लोक सिद्ध अर्थोंका अनुवाद करती हैं।

स्वत्वके लौकिक होनेका अर्थ है स्वत्वके उपाय दाय, विभाग, क्रय, परिग्रह, और अधिगम भी लोक सिद्ध हैं। इनमें क्रय मुख्य है। क्रय-विक्रयके कारण लोग वस्तुओंके स्वामी बनते हैं। बहुत लोग दरिद्र बन जाते हैं। गिनतीके लोगोंके पास धनकी राशि संचित होने लगती है। मार्क्स कहते हैं कि लोग क्रय-विक्रयके प्रचलित व्यवहारको उचित मानते हैं पर यह उचित नहीं है। इसका मूल अन्यायपर प्रतिष्ठित है। मार्क्सने क्रय-विक्रयके मूलकी जो परीक्षा की है उस पर अगले प्रकरणोंमें विचार करूंगा।

पण्यका स्वरूप

पण्योंके लेन देनसे व्यवहार चलता है। अतः पण्यकी परीक्षा आवश्यक है। किसी पण्यको लीजिये जब कोई उसे लेनेके लिये आता है तब पहले देखता है कि इससे मेरे प्रयोजनकी सिद्धि होगी या नहीं। यदि उसका प्रयो-जन न सिद्ध होता हो तो वह उसे नहीं खरीदेगा। खरी-दनेके लिये दूसरी आवश्यक वस्तु है मूल्य। यदि वह मूल्य दे सकता है तो खरीद लेगा। इससे पण्यके दो धर्म आवश्यक प्रतीत होते हैं। एक उपयोगिता और दूसरा मूल्य। यदि एक सेर गेहूंका मूल्य एक आना हो तो एक आना देकर लेनेवाला खरीदेगा। इस दशामें उपयोगी वस्तु गेहूंसे मूल्य एक आना सर्वथा पृथक् वस्तु है। आजकलके लेन-देनमें पण्य और मूल्य प्रायः पृथक रूपमें हैं। इस दशामें मूल्य पण्यके पानेका साधन है स्वयं गेहूंके समान पण्य नहीं है।

+ वीर मित्रोदय, व्यवहाराध्याय, पृ० ५३७

पर जब पण्योंका लेन-देन पण्योंमें हो तो इस सर्वथा पृथक् धातुमय मूल्यकी आवश्यकता नहीं होती। एक सेर गेहूं दो सेर दूध देकर भी लिया जा सकता है। यहां गेहूंका मूल्य दूध है। जब एक आने सेर गेहूं बिका तब इसका बेचनेवाला एक आना देकर एक सेर दूध लेता है। अब भी गेहूंका दूधसे विनिमय हुआ। पहले एक आना विनिमयका साधन था अब वह साधन नहीं है। वस्तुसे वस्तुका विनिमय हो गया। वस्तु द्वारा विनिमयमें वस्तुका मूल्य वस्तु हुई। गेहूंका मूल्य दूध हुआ। इस दशामें मूल्य पण्यसे सर्वथा पृथक् दिखाई नहीं देता। उपयोगिता जिस प्रकार पण्यके अन्दर है उस प्रकार उसका मूल्य उसके अन्दर है उससे बाहर नहीं। दो सेर दूध ही नहीं एक गज कपड़ा और १५ आम आदि भी एक सेर गेहूंके विनिमयका मूल्य हो सकते हैं। गेहूं दूध कपड़ा और आमके गुण भिन्न और आकार भिन्न, इनकी परस्पर समानताका कारण होना चाहिये। वह समानता लानेवाला कारण इन सबमें एक सा समान परिमाणमें रहना चाहिये। इसके बिना ये विभिन्न परिमाणकी भिन्न वस्तु परस्पर समान नहीं हो सकती।

जब एक सेर गेहूं दो सेर दूधका मूल्य हुआ तब गेहूं दूधके समान है। जो वस्तु रंग रूप ऊंचाई--चौड़ाई आदिमें भिन्न होती है उन सबमें यदि किसी एक वस्तुका संबन्ध हो तो वे समान प्रतीत होने लगती हैं। चमड़ा, वस्त्र, पत्ता, फूल, लकड़ी, पत्थर भिन्न भिन्न है। इन सबके साथ काले रंगका संबन्ध होनेपर सब काली प्रतीत होती हैं। इनकी समानताका कारण काला रंग है। गेहूं, दूध, कपड़ा, और आम में भी इन सबसे भिन्न कोई वस्तु होनी चाहिये। वह समान वस्तु है श्रम और उपयोगिता। श्रम और उपयोगिताका समान परिमाण एक सेर गेहूं दो सेर दूध एक गज कपड़ा और १५ आमोंमें है। ये सब वस्तु समान श्रमसे उत्पन्न हुई है। इस कारण इनकी उपयोगिता भी समान हैं।

मूल्य श्रमसे उत्पन्न होता है अतः मूल्यका रूप हुआ उत्पादक श्रम। अर्थात् पण्यमें उपयोगिताके साथ श्रम भी रहना चाहिये। उपयोगिता वस्तुमें उसके गुणोंके कारण आती है। इस प्रकार पण्यके दो धर्म मूल्यमें हैं उपयोगी गुण और श्रम।

उपयोगिता वस्तुको उपयोगी बनाती है। + गुण भेदके कारण वस्तुओंकी उपयोगिता भिन्न होती है। गेहूं रोटी बनाकर खानेके काममें, दूध पीने, वस्त्र पहनने और ओढ़ने, और आम चूसनेके काममें आते हैं। पण्यकी उपयोगिता सर्वथा श्रमके आधीन नहीं। पण्य प्रकृतिके परिणाम हैं। गेहूं, दूध, वस्त्र, और आमकी प्रकृतियां भिन्न हैं अतः उनके गुण भिन्न हैं। प्रकृतिके गुण विकारमें प्रकट होते हैं। गुण भेदके कारण पण्य भिन्न आवश्यकताओंको पूरा करते हैं।

उपयोगिता और श्रम दोनोंको पण्यका कारण मानते हुए भी मार्क्स कहते हैं + उपयोगिता पण्यको उपयोगी बनाती है पर पण्योंका विनिमय उपयोगिताका फल नहीं। यह केवल श्रमका फल है। प्रत्येक उपयोगी वस्तु, जो पर्याप्त परिमाणमें उपस्थित है, उत्तम है। समान मूल्यकी वस्तुओंमें कोई भेद नहीं रहता। हजार पौंडके लोहा और सीसा उतने ही मूल्यके हैं जितना हजार पौंडके मूल्यका चांदी-सोना। उपयोग मूल्यके रूपमें पण्य केवल भिन्न गुणकी उपयोगी वस्तु है पर विनिमय मूल्यके रूपमें वे केवल भिन्न परिमाण हैं। उनमें उपयोग मूल्यका एक परमाणु भी नहीं रहता। यदि पण्योंके उपयोग मूल्यको विचार द्वारा दूर रखें, उसे ध्यानमें न लावें तो केवल एक समान वस्तु रह जाती है। वह है श्रमसे उत्पन्न होना। जब हम उपयोग मूल्यको पृथक् करते हैं तभी भौतिक आश्रय और आकारको भी पृथक् कर देते हैं। जो उन्हें उपयोग मूल्य बनाते हैं। अब हमें मेज, घर, धागा, या कोई भी उपयोगी वस्तु नहीं दिखाई देती। आंखें प्रकृतिके परिणाम रूपमें वस्तुओंको नहीं देखती। नहीं ये वस्तु बढ़ई, गृह, शिल्पी और जुलाहेके श्रमका कार्य प्रतीत होती हैं। किसी भी विशेष प्रकारके श्रमका फल नहीं होती। उत्पन्न पण्योंके उपयोगी गुण ही नहीं उनके साथ वस्तुके अन्दर जो विविध जातिका श्रम है उसके उपयोगी स्वभाव और मूर्त आकारको भी दृष्टिसे दूर कर देते हैं। सब एक जातीय श्रमको विचार द्वारा भिन्न जातियोंसे पृथक् किये, मनुष्यके सामान्य, श्रमके रूपमें परिवर्तित कर दिये जाते हैं। इन सबमें मनुष्यका श्रम घनीभूत हुआ है। जब कभी पण्योंका विनिमय

+ पूंजी, १ भाग, पृ० ४४ और आगे।

होता है तब विनिमय मूल्य उपयोग मूल्यसे सर्वथा पृथक् होकर प्रकाशित होने लगता है। पर जब हम उपयोग मूल्यको विचार द्वारा पृथक् कर देते हैं तब वहां विनिमय मूल्य ही रह जाता है।

यहां वे भूल गये हैं कि विनिमयका कारण श्रम ही नहीं उपयोगिता भी है। जब आप उपयोगिता हटा कर केवल श्रम रख लेते हैं तब श्रम भरी वस्तु पण्य नहीं रहती। यदि किसी वस्तुमें अनुपयोगी श्रम लगा है उससे किसी को लाभ नहीं, तो उसे कोई मिट्टीके मोल भी नहीं लेगा। बिना श्रमके जिस प्रकार अकेली उपयोगिता पण्य होनेका कारण नहीं इस प्रकार बिना उपयोगिताके अकेला श्रम भी। विनिमयके लिये श्रमके सामान्य रूपको, मनुष्यश्रमको, ध्यानमें लाना पडता है। विशेष रूपमें एक श्रम दूसरे श्रमके तुल्य नहीं हो सकता। किसानका गेहूं उत्पन्न करनेमें, फल विक्रेताका फल इकट्ठा करनेमें, ग्वालेका दूध देनेमें श्रम भिन्न प्रकारका है। उसका परिणाम भी भिन्न है। विशेष रूपमें वे परस्पर तुल्य नहीं हो सकते, बिना तुल्य हुए परस्पर मूल्य नहीं बन सकते। इसलिये इन सबको सामान्य रूपमें लाना होगा। यह श्रम ही नहीं उपयोगिताको भी सामान्य रूपमें लाना आवश्यक है।

गेहूं दूध वस्त्र और आमका अथवा लोहा, सीसा, चांदी और सोनेका उपयोग भिन्न भिन्न है, किन्तु सामान्य रूपसे उपयोगिता एक है। श्रमका विशेष मूर्त रूप पृथक् हो सकता है तो उपयोगका विशेष मूर्त रूप भी अविभाज्य नहीं है। उपयोग भेदको सामने रखनेपर वे समान नहीं हो सकते पर उपयोग सामान्यके द्वारा हो जाते हैं। सामान्य मनुष्य श्रमका विचार करने पर मेजमें बढईका घरमें उसके बनाने वालेका और वस्त्रमें जुलाहेका श्रम नहीं रहता। रहता है केवल श्रम। सामान्य उपयोगका विचार करने पर मेजमें लिखने पढनेका साधन होनेका, घरमें निवासके आश्रय होने का, और वस्त्रमें ओढने पहननेके साधन होनेका स्वभाव नहीं रहता। इन सब वस्तुओंमें सामान्य उपयोगिता रह जाती है। अतः सामान्य रूपसे उपयोगिता और श्रम दोनों विनिमयके कारण हैं।

जो श्रम पण्यको उत्पन्न करता है वही उपयोगिताको भी। न पण्यकी उपयोगिता श्रमसे और न उसका श्रम उपयोगितासे सर्वथा पृथक् हो सकता है। पण्य अपने गुणोंके कारण उपयोगी हैं। गुण भूतोंके धर्म हैं वे वस्तुतः उनसे विच्छिन्न नहीं हो सकते। इस रीतिसे मूल आधार रूपमें गुणोंके कारण हैं। श्रम उनका कारण नहीं। पर स्वाभाविक रूपमें गुण पण्यका कारण नहीं बनते। स्वाभाविक रूपमें उनका वह उपयोग नहीं जो नैमित्तिक पण्य दशामें है। गेहूंमें भूख दूर करनेका सामर्थ्य है। यह श्रमसे नहीं उत्पन्न हुआ, यह गेहूंकी मूल प्रकृतिका धर्म है। पर गेहूंका बोना उसका इकट्ठा करना, आटा बनाना ये सब प्राकृतिक धर्म नहीं है। इनका कारण श्रम है। जब तक श्रम गेहूंकी रोटी के रूपमें न कर दे तब तक भूख दूर नहीं हो सकती। इतने अंशमें गेहूंकी उपयोगिता श्रमसे जन्य है। गेहूंके बीज उपयोगिताके स्वाभाविक धर्मोंके उपादान कारण हैं पर निमित्त कारण नहीं। कोई भी जन्य वस्तु और उसके गुण केवल उपादान कारणसे नहीं प्रकट होते, उसके लिये निमित्त कारण चाहिये। पण्य श्रमसे जन्य है अतः उसकी उपयोगिता श्रमके बिना नहीं हो सकती। पण्यकी उपयोगिताको केवल प्रकृति से जन्य समझनेके कारण विनिमय मूल्यका कारण उन्होंने केवल श्रमको समझ लिया।

वे उपयोगके लिये विनिमय मूल्यके समान मूल्य शब्द-का प्रयोग करते हैं। इसकी ओर ध्यान दिया जाये तो भी उपयोगिताको विनिमयका कारण मानना आवश्यक है। जो विनिमयका साधन हो उसे मूल्य कहते हैं। यदि उपयोग विनिमयका साधन नहीं तो उसे मूल नहीं कहना चाहिये। उनके लेखानुसार सत्रहवीं सदीके अंग्रेज लेखक उपयोगके लिये गुण और विनिमय मूल्यके लिये केवल मूल्य शब्दका प्रयोग करते थे ×।

गुण शब्दसे गुणीके ओर ध्यान जाता है गुणीके साथ ही गुणका संबन्ध देखने पर गुणों द्वारा उत्पन्न उपयोगिता बिना श्रमके दिखाई देने लगती है।

पण्यके दो धर्मोंका निरूपण हुआ है। ये पण्यके लिये आवश्यक हैं। पर उसके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले असाधारण धर्म नहीं हैं। एक वस्तु बिना मूल्यके उपयोगी हो

× पूंजी, १ भाग, पृ० ४२, पाद, टिप्पणी संख्या १।

सकती है। धूप, हवा, वनके वृक्ष आदि इस प्रकारके हैं। इनकी उपयोगिता मनुष्यके श्रमसे नहीं उत्पन्न हुई। कोई वस्तु मनुष्यके श्रमसे उत्पन्न हो और उपयोगी हो यह हो सकता है। इस दशामें वह पण्य हुए बिना भी रह सकती है। कुम्हार यदि अपने लिये घड़ा बनाता हो तो वह उसके लिये उपयोगी और उसके श्रमसे उत्पन्न होने पर भी पण्य नहीं है। इसके लिये उसका अन्य लोगोंके काममें आना आवश्यक है। योग्य न होकर उसे विनिमयके योग्य होना चाहिये। वनमें यदि कोई पत्थरोंका ढेर खड़ा कर दे, उससे किसीको लाभ पहुंचनेकी आशा न हो तो श्रमसे जन्य होनेपर भी वह पण्य नहीं है। पण्य वह है जो उपयोगी हो, श्रमसे जन्य हो और उसका विनिमय हो सकता हो।

यदि पण्यके स्वरूपको जानना हो तो उपयोगिता और श्रमके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। विनिमयके योग्य होना केवल इतना पण्यका स्वरूप है। उपयोगिता और श्रम विनिमयके कारण हैं। केवल कारणके ज्ञानसे कार्यके स्वरूपका निश्चय नहीं होता। तन्तु जुलाहा आदि पटके कारण हैं पर उनको देखकर कोई पटको नहीं जान सकता। कारणका ज्ञान कार्यके स्वरूपकी पहचानमें सहायक अवश्य है।

यहां एक वस्तु पर विशेष ध्यान देना चाहिये। पण्यकी उत्पत्तिमें और उसकी उपयोगितामें श्रम कारण है। पर केवल श्रम कारण नहीं है। ज्ञान भी कारण है। भौतिक पदार्थोंमें रहनेके कारण श्रम भी उनके समान प्रत्यक्ष है। जुलाहा, बढ़ई, लुहार, माली, हलवाई, सैनिक आदि जब अंगोंसे काम करते हैं तब उनके अंग श्रम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। जुलाहा बढ़ई, आदि अनजाने यंत्रके समान काम नहीं कर रहे होते। उनका ज्ञान श्रम कराता है। लुहार बढ़ईका काम नहीं कर सकता। कारण उसे लकड़ीके कामका ज्ञान नहीं। ज्ञान बढ़ई अथवा लुहारके अन्दर है, वह श्रम के समान अंगोंमें प्रत्यक्ष नहीं होता। जब चतुर और साधारण शिल्पी किसी एक कामको घंटा अथवा दो घंटेके समान नियत कालमें करते हैं तब सामान्य पुरुष भी श्रम और कार्य पर होनेवाले प्रभावका अन्तर जान लेता है।

श्रमके समान ही ज्ञानका परिमाण भी कालके द्वारा होता है। उपयोगिताका मूल कारण श्रमीका ज्ञान है। पहले ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है पीछे ज्ञानके अनुसार श्रम होता है। यह ज्ञानका भेद है जो मनुष्यकी नाना इच्छाओंको नाना पण्योंसे पूरा करता है। अकेला ज्ञान पण्यको उत्पन्न नहीं कर सकता। जब ज्ञान उत्पन्न करेगा तब श्रमके द्वारा। यदि अकेला श्रम पण्यका, उसके मूल्यका निश्चय करानेवाला हो तो उस पण्यका मूल्य बहुत अधिक होना चाहिये जिसे अचतुर शिल्पीने बहुत समय लगा कर बनाया हो। उसका मूल्य बहुत न्यून होना चाहिये। जिसे चतुर निर्माताने अल्प कालमें बना डाला हो। पर इसे कोई उचित नहीं मानता। इसका कारण? इसका कारण ज्ञान है। चतुर शिल्पीका ज्ञान अचतुरकी अपेक्षा कहीं अधिक है। इसलिये उसका कार्य अधिक उपयोगी है। विशेष उपयोगिताके कारण उसके श्रमका अधिक मूल्य है। पहले अधिक ज्ञान फिर श्रम उसके अनन्तर पण्य और उसकी उपयोगिता इस क्रमसे ज्ञान और श्रम दोनों उपयोगिताके कारण हैं। पण्यमें श्रम और ज्ञान मूर्तिमान्, हो उठते हैं।

ज्ञानार्जनके लिये भी श्रम करना पड़ता है। जब ज्ञान-संयुक्त पुरुष पण्यको उत्पन्न करने लगता है तब उसी कालका, पण्यकी उत्पत्तिसे अव्यवहित पूर्वकालका श्रम ही कारण नहीं होता। ज्ञानार्जनके कालमें किया हुआ श्रम भी कारण होता है। ज्ञानके उत्कर्षके कारण चतुरका श्रम अल्प कालमें घनीभूत अथवा गहरा हो उठता है। पर अचतुर का अधिक कालमें भी घना नहीं होने पाता, केवल फैला रहता है। जो लोग ज्ञानके बिना केवल श्रमको चतुर शिल्पीके पण्यमें घनीभूत कहते हैं वे उसकी घनताका कारण नहीं बता सकते।

अब वह कठिनाई भी नहीं रहती जो कुछ अर्थ शास्त्रियोंको उपयोगिताको परिमाणको जाननेमें प्रतीत होती थी। वस्त्र ओढ़ने पहननेके काममें आता है, गेहूं खाये जाते हैं। दूध पिया जाता है। लोहेके संदूक वस्तु रखनेके काममें आते हैं। इन सब वस्तुओंके जीवनका काल एक सा नहीं है। कुछ दो चार घंटे रह सकती है और कुछ कई मासों या वर्षों तक। जो जितना अधिक काल तक रहेगी वह

उतना अधिक उपयोगी होगी। अब इनकी उपयोगिता भिन्न हैं तो इनका मूल्य समान क्यों? जीवनकालकी न्यूनाधिकताके अतिरिक्त एक अन्य कारणसे भी पण्योंके उपयोग समान नहीं हो सकते। वस्त्रसे सर्दी-गर्मीका बचाव है, गेहूं खाने और दूध पीनेसे भूख दूर होती हैं। भूख दूर होने और सर्दी-गर्मीसे बचनेमें किसी प्रकारकी एकता नहीं। दोनोंका अनुभव सर्वथा भिन्न प्रकारका है। पर पण्योंके मूल्यका निश्चय करनेके लिये इनकी आयु और स्वरूपके भेदको ध्यानमें नहीं रखते इनके उत्पन्न करनेमें ज्ञान और श्रमको कितने कालतक प्रयुक्त होना पडा यह जानना होता है। समस्त मनुष्योंके श्रम सामान्य रूपसे मनुष्य श्रम है। समस्त मनुष्योंके ज्ञान सामान्य रूपसे मनुष्य ज्ञान हैं। समस्त पण्योंके अन्दर लगे ज्ञान और श्रमके समूहको एक राशि मान कर मूल्यका निश्चय करते हैं। समाजका श्रम और ज्ञान एक पण्यकी उत्पत्तिके लिये जितना आवश्यक है, उतना ही दूसरे पण्यको उत्पन्न करनेके लिये आवश्यक होने पर मूल्य सम हो जाता है। एक एक व्यक्तिके कालको नहीं देखा जाता। व्यक्तियोंके उत्पादन कालमें भेद रहता है। सामाजिक रूपसे आवश्यक ज्ञान-सहित श्रम अनुपातसे किसी नियतकालकी साधारण अवस्थामें समान होने पर मूल्यकी घटा-बढीका कारण है। ज्ञानकी उत्पादकता बिना श्रमके नहीं, न श्रमके समान वह प्रत्यक्ष है इस कारण सुविधाके लिये मूल्यका निश्चय श्रम द्वारा करते हैं।

श्रमका उभय विध स्वरूप

सामान्य और विशेष

जब एक पण्य दूसरे पण्यका मूल्य होता है तब उन दोनोंमें भिन्न प्रकारका श्रम कारण होता है। वस्त्र और गेहूं दो पण्य हैं। किसी कालमें एक गज वस्त्र आठ सेर गेहूंका मूल्य हो सकता है। वस्त्रके उत्पन्न करनेवालेका श्रम किसानके श्रमसे बहुत भिन्न है। जिस प्रकार वस्त्र और गेहूंका उपयोग भिन्न है इस प्रकार उत्पादक श्रमोंका उपयोग भी भिन्न है। श्रमोंका भेद न हो तो पण्योंमें भेद नहीं हो सकता। उपयोगिताका भेद विनिमयका कारण है। वस्त्रका वस्त्रके लिये अथवा गेहूंका गेहूंके लिये विनिमय नहीं होता। जुलाही वस्त्रको बुनकर अपने पहनने ओढनेके काममें ले आये अथवा दूसरा कोई खरीद कर पहने वस्त्र दोनों दशाओंमें उपयोगी रहेगा। उपयोगिताके लिये पण्य होना आवश्यक नहीं है। यदि किसी कालमें पहननेवाले स्वयं बुन लेनेवाले हों तो वस्त्रका विनिमय नहीं होगा। पर पहननेकी आवश्यकताके कारण उन्हें वस्त्र उत्पन्न करते रहना पडेगा। इस दशामें वस्त्र और मनुष्यका संबन्ध है पर बुननेवाले और पहिरनेवाले दो भिन्न प्रकारके मनुष्यों-का परस्पर संबन्ध नहीं है।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि जिस प्रकार पण्य हुए बिना वस्तु उपयोगी होती है इस प्रकार बिना उपयोगी बने वस्तु पण्य भी हो सकती है। उपयोगिताके बिना कोई विनिमय नहीं करेगा। विक्रेता पण्यको विनिमयके अतिरिक्त अनुपयोगी चाहे समझे पर उसका उपयोग अवश्य होना चाहिये। लेनेवाला उपयोगी समझ कर लेगा।

इस ओर ध्यान न देकर मार्क्स श्रमके उपयोगी स्वभावको पृथक् करके केवल मनुष्यके श्रमका विस्तार देखने लगते हैं। + निःसन्देह सीना और बुनना भिन्न उपयोगके श्रम होनेपर भी मूलमें मनुष्यके मस्तिष्क नाडी और अंगोंके व्यापार हैं, अर्थात् मनुष्यके श्रम हैं। पर श्रम मात्र होने पर भी वे उपयोग शून्य नहीं हो गये। वे एक उपयोगी मनुष्य श्रमके दो भिन्न रूप हैं, अनुपयोगी श्रमके नहीं। विनिमयके उत्पादक श्रमका एक सामान्य रूप है, दूसरा विशेष रूप। सामान्य रूपके अनुसार वह विनिमयका कारण है। एक पण्यमें श्रम जितना उपयोगी है उतना दूसरेमें। विशेष रूपसे वह भिन्न उपयोगका कारण है। पण्यका उत्पादक श्रम सामान्य रूपमें अनुपयोगी नहीं हो सकता। कारण, पण्यके लिये उपयोगिता अपरिहार्य है। बिना उपयोगिताके श्रम सामान्य कारण हो सकता है पर अनित्य वस्तु मात्रके लिये। अनुपयोगी वस्तु भी श्रमसे उत्पन्न होती है। उपयोगी पर अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता पूरी करनेमें समर्थ वस्तुका कारण भी श्रम है। पण्य भी बिना श्रमके नहीं उत्पन्न होता। इनमें भोग्य और पण्यके श्रमका उपयोगी होना आवश्यक है। अनुपयोगी वस्तुका उत्पादक श्रम अनुपयोगी है। ये सभी श्रम मनुष्य

+ पूंजी, १ भाग, पृ० ५१।

के श्रम है। इन सबका सामान्य रूप उपयोगितासे शून्य है। जिस प्रकार उपयोगी श्रम इस प्रकार अनुपयोगी श्रम भी श्रम है। इस दशामें श्रम अर्थात् मनुष्य श्रम, पण्य और पण्येतर भोग्य वस्तुका जनक नहीं है। इस रूपमें वह वस्तु मात्रका जनक है। श्रम सामान्यके सामने जब वस्तु आती है तब भोग्य वा पण्य रूपमें नहीं आती। वे अन्य वस्तुके रूपमें आती है। पर भोग्य और पण्यके उत्पादक श्रमका सामान्य रूपमें भी उपयोगी होना अपरिहार्य है। बिना उपयोगिताके मनुष्यका श्रम मात्र यदि विनिमयका कारण हो तो अनुपयोगी वस्तुका भी विनिमय होना चाहिये। मनुष्यका श्रम तो उसमें है फिर वह पण्य क्यों न हो जाय।

बुनना सीना आदि उपयोगी श्रमके विशेष रूप हैं। इन सबका सामान्य रूप जिसमें बुनने आदिका विशेष आकार लक्षित नहीं होता, उपयोगी श्रम सामान्य है। जिसमें न बुनने आदिका विशेष आकार आदि प्रतीत होता है, न श्रम सामान्यकी उपयोगिता सामने आती है वह अधिक व्यापक श्रम सामान्य है। बुनने, सीने आदिकी अपेक्षा उपयोगी श्रम सामान्य विशेष है। अर्थात् उपयोगी श्रम सामान्य रूप भी है और विशेष रूप भी। विनिमयके लिये पण्यमें जिस प्रकार उपयोगिता और श्रमका सामान्य रूप आवश्यक है इस प्रकार पण्यके उत्पादक श्रम में भी। इसलिये जहांतक श्रम केवल उपयोगका उत्पादक है वहांतक वह विनिमयसे पृथक् हो सकता है। पर विनिमयके उत्पन्न करनेपर उसका सामान्य रूप उपयोगसे शून्य नहीं हो सकता।

साधारण रूपसे श्रम और उपयोगिताके परिमाणमें भेद नहीं होता। पर सापेक्ष रूपसे भेद होने लगता है। यदि एक वस्त्रके उत्पन्न करनेपर जितना श्रम-काल आवश्यक है वह नहीं बदलता तो पण्यकी संख्यामें वृद्धि होनेपर मूल्यका अर्थात् श्रमका बढ़ना अनिवार्य है। एक वस्त्रके उत्पन्न करनेमें एक घंटा लगा है तो दोकी उत्पत्तिमें दो घंटे लगेंगे। श्रमके बढ़नेपर पण्यके उपयोगकी वृद्धि हुई। एक वस्त्र एक मनुष्यके पहिननेके काममें आयगा दो वस्त्र दोके पहननेमें आयंगे। पर कल्पना कीजिये पहले एक घंटेमें एक वस्त्र होता था पर अब कई कारणोंसे एक घंटेमें दो वस्त्र उत्पन्न होते हैं। इस दशामें श्रम काल नहीं बदला पर उपयोगितामें परिवर्तन आ गया। एक वस्त्र एक मनुष्यकी आवश्यकता पूरी करता था अब दोकी आवश्यकता पूरी होगी। श्रम मूल्यका मूल है अतः इस परिवर्तित अवस्थामें एक वस्त्रका मूल्य जितना था उतना अब दो वस्त्रोंका होगा। मूल्य न्यून हो गया और उपयोग बढ़ गया। बिना श्रमकी वृद्धिके उपयोगिता बढ़ी। मूल्य और उपयोगिता विरोधी दशामें चले। मूल्यकी घटती और उपयोगिताकी बढ़ती हुई। पर यहां मूल्यकी न्यूनता स्वाभाविक निरपेक्ष रूपमें नहीं हुई। मूल्यका कारण है श्रम। उसका पहला परिमाण एक घंटेका था। वह अब भी वहीं है उसमें कोई अन्तर नहीं आया। उपयोगिताकी अपेक्षा उसमें न्यूनता है। अपेक्षासे न्यूनता प्रतीतिमें आ जाती है पर वस्तुके स्वरूपमें नहीं। भिन्न लंबाईकी दो रेखाओंमें एक छोटी और दूसरी लंबी प्रतीत हो तो वस्तुतः उनमें किसी अंशकी न्यूनता व अधिकता नहीं हो जाती। अपेक्षाके बिना नये विचारके पहलेकी वही दो रेखायें छोटी-बड़ी दिखाई देने लगती है। श्रम काल उतना है, उसका संबन्ध एक वस्त्रसे न होकर दो वस्त्रोंसे हो गया है। इसलिये मूल्य उतना ही है, उसका संबन्ध दो स्थानोंपर हो गया है। यदि दो वस्त्रोंके उत्पादक श्रमके एक घंटेकी अपेक्षासे एक वस्त्रके उत्पादक एक घंटेको देखा जाये तो एक वस्त्रका मूल्य बढ़ गया पर उपयोगिता न्यून हो गई। घंटेके स्वरूपमें कोई विकार नहीं हुआ। वही एक घंटेका श्रम है। एक कालमें एक श्रम दो परस्पर विरोधी धर्मोंका आश्रय नहीं बन सकता। पर श्रम रूप मूल्य एक कालमें न्यून भी प्रतीत होता है और अधिक भी। इसलिये यह तारतम्य स्वाभाविक वस्तुगत नहीं है। तीन रेखाओंमें मध्यकी रेखा पहलीकी अपेक्षा दीर्घ और तीसरीकी अपेक्षा ह्रस्व हो तो मध्यकी दूसरी रेखाके ह्रस्वपन और दीर्घपन वस्तुगत नहीं होते। सभी आपेक्षिक धर्म वस्तुमें नहीं रहते। अपेक्षा एक प्रकारकी बुद्धिका नाम है। ये धर्म बुद्धिसे उत्पन्न होते हैं, इनका सीधा संबन्ध वस्तुके साथ नहीं होता। निरपेक्ष शुद्ध रूपके अनुसार उपयोगिता और विनिमय मूल्य विरुद्ध दशामें नहीं जाते।

अपेक्षासे उत्पन्न होनेपर भी यह भेद, यह विरोध, मिथ्या, देवदत्तमें यज्ञदत्तके, वा रस्सीमें सांपके भ्रमके

समान, काल्पनिक नहीं है। एक वस्त्रमें उपयोगिता जिस प्रकार सत्य है इस प्रकार दो वस्त्रोंमें भी।

अन्य रीतिसे भी उपयोगिताके अपेक्षा द्वारा प्रतीत होनेवाले तारतम्यका भ्रमसे भेद स्पष्ट हो सकता है। ग्रीष्म ऋतुमें सूती शीत वस्त्र उपयोगी है और शीत ऋतुमें ऊनी उष्ण वस्त्र। उष्ण वस्त्र गर्मीकी ऋतुमें और शीत ऋतुमें शीत वस्त्र उपयोगी नहीं रहते। यह अनुपयोगिता कालकी अपेक्षासे है वस्तुतः नहीं। वस्त्रोंमें शीतल और उष्ण रखनेका सामर्थ्य रत्तीभर भी नष्ट नहीं हुआ। केवल पहननेवालोंकी आवश्यकता में वस्तुतः अन्तर हुआ है। उष्ण वस्त्रकी वस्तुगत उपयोगिता गर्मीकी ऋतुमें भी रहती है। अर्थात् उसका गर्म करनेका सामर्थ्य गर्मीकी ऋतुमें भी रहता है।

एक अन्य उदाहरण लीजिये जिसमें वस्तुकी अपेक्षा उपयोगिताका तारतम्य शीघ्रतासे प्रतीत होने लगता है। कल्पना कीजिये, एक मनुष्यकी भूख आठ छटांक भरके लड्डुओंसे दूर हो सकती है। पहला लड्डु उसकी तीव्र भूखके लिये अत्यन्त उपयोगी है। दूसरा लड्डु खानेके समय भूख कुछ परिमाणमें शान्त हो चुकी है अतः दूसरे लड्डुकी उपयोगिता पहलेकी अपेक्षा न्यून प्रतीत होगी। उत्तरोत्तर न्यून प्रतीत होती जायगी। आठों खा चुकनेपर यदि नौवां लड्डु मिले तो वह सर्वथा अनुपयोगी प्रतीत होगा। भूखमें धीरे धीरे न्यूनता वस्तुतः होती गई पर प्रतीत होने लगी लड्डुकी उपयोगितामें। आठ लड्डुओंकी उपयोगिता न क्रमसे नष्ट हुई न नौवां सर्वथा उपयोगितासे रहित हुआ। अपेक्षासे विनाश प्रतीत होने लगता है।

विनिमय मूल्य और उपयोगिता भी अपेक्षाके कारण विरोधी प्रतीत होते हैं। शुद्ध रूपमें वस्तुतः वे बिना विरोधके एक रस रहते हैं। इस कारण जितना श्रम होगा उतनी उपयोगिता होगी। दो क्या, यदि एक घंटेमें दस हजार वस्त्र उत्पन्न हों तो उनकी उपयोगिताके उत्पन्न करनेका सामर्थ्य एक घंटेके श्रममें मानना ही पड़ेगा। श्रममें उपयोगिताके समान मूल्य उत्पन्न करनेका भी सामर्थ्य है। श्रमके जिन अंशोंने उपयोगिता उत्पन्न की वे ही मूल्य उत्पन्न करते हैं। क्षणभरका श्रम जिस परिमाणमें उपयोगिताका जनक है उस परिमाणमें मूल्यका भी। भौतिक गुणोंके कारण वस्त्रोंकी उपयोगिता प्रत्यक्ष है। पर श्रम क्षणिक होनेके कारण गुणोंके समान प्रत्यक्ष नहीं है। इसलिये उसका विस्तार परिमाणमें उपयोगिताके समान होने पर भी स्पष्ट नहीं दिखाई देता। वस्त्रोंके आकार-प्रकारको श्रमका बना मूर्त रूप माना जाय तो श्रमका विशाल परिमाण भी प्रत्यक्ष है। स्वयं श्रम मूल्य है अतः उपयोगिता और विनिमय शुद्ध रूपमें परिमाण समान रखते हैं।

प्राचीन भारतीय पथ-विवेचन

(लेखक— श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक' साहित्यालङ्कार, सिद्धान्त शास्त्री, कानपुर)

किसी भी देशमें सड़कोंका होना सभ्यताका सूचक है। सड़कोंकी आवश्यकताका अनुभव सभ्य जीवनकी प्रारम्भिक दशामें ही होता है।

पंथोंके विषय वेदमें लिखा है:—

" ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे। यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड "॥

(अथर्ववेद संहिता काण्ड १२- सूक्त १, मंत्र ४७)

अर्थः— 'हे पृथिवी! (ये) जो (ते) तेरे (बहवः) बहुत सारे (जनायनाः) मनुष्योंके जानेके (पन्थानः) रास्ते हैं और (रथस्य) रथोंके और (अनसः च यातवे) गाड़ियोंके जानेके लिए (वर्त्म) मार्ग हैं (यैः) जिनसे (भद्रपापाः) भले और बुरे (उभये) दोनों प्रकारके लोग (संचरन्ति) बराबर चला करते हैं (तं पन्थानं) उस मार्गको हम लोग (जयेम) विजय करें जिससे वह (अनमित्रं) शत्रु रहित और (अतस्करम्) चोर, डाकू रहित हो जाय। हे पृथिवी! (यत् शिवम्) जो मङ्गल, कल्याणकारी पदार्थ हो (तेन नः मृड) उससे हमें सुखी कर।'

व्याख्या— मंत्रमें प्रथम बात यह ज्ञात होती है कि राष्ट्रमें सञ्चारके लिए बहुतसे मार्ग होने चाहिए और वे मार्ग मनुष्यों, गाड़ियों और रथोंके चलनेके लिए अलग अलग होनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि सभी प्रकारका यातायात एक ही सड़क पर हो; या तो इन तीनोंके चलनेके लिए मार्ग इतना चौड़ा हो कि उसके तीन विभाग किए जा सकें और प्रत्येक विभाग मनुष्यों, गाड़ियों और रथोंके आने जानेके लिए नियत कर दिया जाना चाहिए। मनुष्योंके मार्गसे तात्पर्य यहाँ पैदल चलनेवाले मनुष्योंके मार्गसे है। गाड़ियोंसे तात्पर्य भार ढोनेवाले तथा मन्द गतिसे चलनेवाले यानोंसे है। रथ तीव्रगामी यानोंका बोधक है। इन तीनोंके लिए अलग अलग मार्ग बने होनेसे यानोंके टकरानेसे दुर्घटनाएँ होनेकी सम्भवना बहुत कम हो जायगी और सड़कें भी विलम्बसे खराब होंगी। भारतके प्राचीन आर्य लोग वेदकी इस शिक्षाको ध्यानमें रखते हुए अपने नगरोंका निर्माण ऐसा करते थे कि उनके बाजारोंमें प्रत्येक प्रकारके यातायात के लिए अलग अलग मार्ग होते थे।

मंत्रमें दूसरी एक और बात ज्ञात होती है कि राष्ट्रके इन मार्गोंमें किसी भी प्रजाजनको चलनेकी मनाही नहीं होनी चाहिए। आज भी दक्षिणभारतमें स्पृश्यास्पृश्यका इतना विचार है कि एक अछूत जाति ब्राह्मणोंके मार्ग पर नहीं चल सकती। यदि दक्षिण भारतमें उल्लादन जाति ८० हाथ के भीतर आजाय तो शूद्र दूषित हो जाता है, ब्राह्मणादि की तो बात ही क्या। नायादि जातिका आदमी दो सौ हाथकी दूरी पर आ जाय तो सभी अपवित्र हो जाते हैं। "[१]

मंत्रमें कहा है कि " इन मार्गों पर भद्र और पापी दोनोंके लोग मिलकर चलते हैं "। पापियोंको राज्यकी ओरसे दण्ड भले ही मिलेगा परन्तु जब तक उनका पाप प्रमाणित नहीं हो जाता और उन्हें कारागारमें जानेकी राजाज्ञा नहीं मिलती तब तक राष्ट्रकी सड़कोंपर चलना उनका कोई बन्द नहीं कर सकता। वे सबके साथ मिलकर चलते हैं। जब पापीको भी देशकी सड़कोंपर चलनेसे नहीं रोका जा सकता तो जो पापी नहीं हैं और जो अपनी शक्ति और

१ " देखो— आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन शास्त्री एम. ए. कृत " भारत वर्षमें जातिभेद " प्रथम संस्करण पृष्ठ ९८ से १०४ तक।

योग्यताके अनुकूल समाजकी सेवा भी कर रहे हैं, जो केवल वंश-विशेषमें उत्पन्न होनेके कारण घृणित समझे जाने लगे हैं, भला उन निर्दोष छोटे लोगोंको देशकी सडकों पर चलनेसे कैसे रोका जा सकता है ? वेदकी इस स्पष्टाज्ञाके होते हुए भी न जाने भारत वर्षके इतिहासमें पिछली कुछ शताब्दियोंसे यहाँके कुछ प्रदेशोंमें अस्पृश्य समझी जाने-वाली जातियोंको देशकी सडकोंपर स्वच्छन्द चलनेकी मनाई की अतिनिन्दनीय प्रथा कैसे चल पडी ?

मंत्रके "तेरे उन मार्गोंको हम लोग विजय करें" इसका भाव यह है कि हम उन मार्गों पर विजयीकी भाँति चलें।

तीसरी बात मंत्रसे यह ज्ञात होती है कि राज्यकी ओर से मार्गों पर ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि यात्रियोंको किसी प्रकारके शत्रु और चोरादिका भय न हो।

देशमें सडकें बनेंगी तो उनके निर्माणके समय अनेक स्थानोंपर बीचमें नदियोंके आ जानेकी भी संभावना रहेगी। उन नदियोंको पार करनेके लिए पुल बंधवाने और जहाँ किसी कारण पुल बनने सम्भव न हो वहाँ नौका आदिका प्रबन्ध करके नदियोंको पार करनेका प्रबन्ध किया जाय।

नदियोंको पार करनेका प्रबन्ध करना भी वेदमें राजाका एक कर्तव्य बतलाया गया है। यथा—

"सुतरणां अकृणोरिन्द्र सिन्धून्" (ऋ० ४।१९।६)

अर्थ – 'हे (इन्द्र) सम्राट्![2] तुम नदियोंको सुतरणा अर्थात् सुगमतासे तरने योग्य बना देते हो।"

'य इद्ध आ विवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः। द्युम्नाय सुतरा अपः' (ऋ० ६।६०।११)

अर्थ – 'जो मनुष्य राज्यके लिए देय धनके दान द्वारा इन्द्र (सम्राट्) की परिचर्या करके उसे सुख देते हैं इन्द्र उनके लिए राष्ट्रकी नदियों आदिके जलोंको (अपः सुतरा) अर्थात् सुगमतासे तरने योग्य बना देता है। जिससे (उस-के पार जाकर व्यापार अर्पण करके) लोग धन कमा सकें (द्युम्नाय)।'

'नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः' (ऋ० ९।९६।१)

अर्थ– इन्द्र (सम्राट्) के राज्यमें जो नदियें बहती हैं वे लोगोंके पार जानेके लिए (तराय) सुपारा अर्थात् सुग-मतासे पार करने योग्य बनी हुई हैं।

'नि षू नमध्वं भवता सुपराः सिन्धवः (ऋ० ३।३३।९)

अर्थ – 'हे नदियों ! तुम नीचे हो जाओ और सुपारा अर्थात् सुगमतासे पार करने योग्य बन जाओ।'

अब इन्द्र (सम्राट्) राष्ट्रकी नदियोंको 'सुतरणा' और 'सुपारा' दो ही तरहसे बना सकता है। एक तो उन पर पुल बन्धवाकर और दूसरे उनमें उत्तम नौकाओंके चलनेका प्रबन्ध करके। ऊपर उद्धृत प्रथम तीन मंत्र खण्डोंके 'सुत-रणा' और 'सुपारा' शब्दोंके ये दोनों ही भाव निकल सकते हैं। चौथे मंत्रमें 'सुपाराः' शब्दसे पुल बँधवानेका ही भाव निकलता है।

प्राचीन कालसे ही भारतके व्यापार-केन्द्रोंसे मध्य तथा पश्चिमी एशिया तक स्थल-मार्ग वर्तमान थे। जैसे कि सिन्ध-प्रदेशके 'हरप्पा' और 'मोहओदडो' के खण्डहरोंकी खुदाईसे प्रकट होता है। डॉ० नरेन्द्रनाथ लाहा एम. ए., पी-एच० डी०, पी० आर० एस० लिखते हैं:– "मोहओ-दडोकी नगर-निर्माण-प्रणालीपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि सिन्धु-उपत्यकाके निवासी इस कलामें बडे निपुण थे। वहाँकी ११ से ३० फीट तक चौडी सडकें, मोडपरकी इमारतोंके गोलाकार कोन तथा ३ फीट ५ इंचसे लेकर ७ फीट तक चौडी गलियाँ आदि उपर्युक्त कथनके समर्थक हैं।'[3]

डॉ० लक्ष्मण स्वरूप एम. ए., डी० फिल० लिखते हैं:– 'मोहओदडो नगरकी स्थापना एक विधि विशेषके अनुसार हुई है। मध्यमें राजपथ था। यह बहुत चौडा था। दूसरी दोनों तरफ बडी बडी दूकानें थीं। उन दूकानोंके ऊपर, परि-वारोंके रहनेके लिए, चौबारे बने हुए थे। ऊपर जानेके

२ – इन्द्र शब्दके कई अर्थ होते हैं, इसके लिए देखो मेरा 'इन्द्रका वैदिक स्वरूप' शीर्षक लेख जो मासिक पत्र 'दया-नन्द-सन्देश' दिल्ली मई, जून १९४८ ई. में प्रकाशित हुआ है— लेखक

३ मासिक पत्रिका 'गङ्गा' का 'पुरा तत्त्वाङ्क' प्रवाह ३ जनवरी १९३३ ई; तरङ्ग १ पृष्ठ ५१ में 'सिन्धु उपत्यकाकी सभ्यता और मोहओदडो' शीर्षक लेख।

लिए सीढ़ियाँ थीं जो बाजारमें जाती थीं। इस राजपथके उत्तर और दक्षिणमें गलियाँ हैं।' ४

प्रोफेसर ग्रिफिथ, कीथ और रेगोजीन भी वैदिक कालमें 'महापथ' (देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जानेवाली) सड़कों तकका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। ५

भारतमें महाकाव्य कालके वास्तु-विद्या-सम्बन्धी भग्नावशेष उपस्थित नहीं हैं, फिर भी महाकाव्योंके अध्ययनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सड़क-निर्माण-कला उच्चकोटि की थी। आर्योंका निवास-स्थान प्रायः समकोण चतुर्भुजाकृतिका होता था। चारों किनारे चारों दिशाओंकी ओर रहते थे। वे दो मुख्य गलियों (सड़कों) द्वारा समविभक्त रहते थे। गलियाँ एक दूसरेसे मध्यमें मिलती थीं और उनके चारों छोरोंपर चार सिंह-दरवाजे रहते थे। दोनोंमें दीर्घतर गली 'राजपथ' (जो बड़े नगरोंमें मुख्य राजपथ गिना जाता था) कही जाती थी, छोटी गलीका नाम 'महाकाल' या 'वामन' था जिससे लम्बाई और चौड़ाई ज्ञात होती थीं। एक चौड़ा मार्ग ग्रामके बाहरी खण्डों और सीमाकी दीवारोंके बीचमें होता था वह 'मङ्गलवीथि' कहलाता था। ६

प्राचीन नगरोंके वर्णनसे ज्ञात होता है कि सड़कें स्वच्छ, जल सिंचित और कभी कभी सुगन्धित की हुई भी रहती थीं। आजकलकी उत्तम 'मनुष्य पालिनी संस्था' (म्यूनिसिपालिटियों) में भी सड़कों पर केवल जल ही के छिड़कनेका प्रबन्ध कठिनाईसे रहता है। ७ समारोहके अवसरपर पताकाएँ बान्धने, मार्गोंपर जल छिड़कनेकी प्रथाका वर्णन 'रामायण' में मिलता है। यथा—

'आबध्यन्तां पताकाश्च राजमार्गाश्च सिच्यन्ताम्
(वाल्मीकीय रामायण अयोध्याका० ३।१६)

अर्थात् – रामके राज्याभिषेक समारोहमें स्थान स्थानपर पताकाएँ बान्धने और मार्गों पर जल छिड़कनेकी प्रथा इस वचनमें स्पष्ट है।

'सिक्तां चन्दनतोयैश्च' (वाल्मीकीय रामायण ६ १।७।२)
यहाँ चन्दन-जलका छिड़काव करनेका वर्णन है।

बौद्धकालीन भारत (ई० पू० ७०० से लगभग २०० ई० तक) में सड़कों और व्यापारिक मार्गोंकी कमी नहीं थी। प्रो० राइज डेविड्स उस समय सड़कों और पुलोंका होना नहीं मानते हैं। ८

किन्तु जातकोंसे उनके मतका खण्डन होता है। उस समय ग्रामीण जन स्वेच्छासे परिश्रम कर सड़कोंकी मरम्मत करते थे। और स्त्रियाँ नागरिक कार्योंमें भाग लेनेमें अपनी प्रतिष्ठा समझती थीं। ९ सड़कोंकी रक्षा करना राज्य-परिषद्का एक प्रधान कर्तव्य था। १० ग्रामवासीगण सड़कों-परके पत्थरों आदिको लाठियोंसे हटा देते थे, ऊबड़-खाबड़ स्थानोंको बराबर कर देते थे और पुलोंकी रचना करते थे। देशके धनीमानी पुरुष बस्तीके बाहर सड़कोंके किनारे अच्छे अच्छे आश्रम बनवा देते थे। बहुत स्थानोंमें इन आश्रमोंका प्रबन्ध पञ्चायती चन्देसे होता था। परिव्राजक साधु इनमें ठहरते थे। लोग इनका बहुत सत्कार करते थे और इनके दार्शनिक विचार सुनकर लाभ उठाते थे। ११

---

४ वही, पृष्ठ ११ 'मोहनजोदारा' शीर्षक लेख।
५ " Vedic India Rigveda " Vol. I and II, (Edited by Griffth).
६ महाकाव्यकालीन सड़कोंका वर्णन श्री ई० बी० हावेलकी " History of Aryan rule in India " P. 26 में है।
७ 'Journal of Bihar and Orissa Research society' Vol II, Part II, 1916, pp. 135-151में, महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झा एम्. ए. डी. लिट्का " Housebuilding and sanitation in ancient India " शीर्षक लेख।
८ Phys David's Buddhist India P. 98.
९ 'The Cambridge History of India' Vol I, Page 203.
१० 'Mukherjea's Local Government in ancient India' Page 156.
११ पं. जनार्दन भट्ट एम. ए. कृत 'बौद्धकालीन भारत' पृष्ठ २१.

प्राचीन इतिहासका अनुसन्धानकर्त्ता प्लीनी लिखता है कि भारतमें प्रवेश करते ही मेगस्थनीजके मस्तिष्कमें जो पहली वस्तु चुभी, वह थी सीमाप्रान्त (Fron fier, से पाटलीपुत्रको जानेवाली सडक। इस पर राजदूतने अवश्य यात्रा की होगी। १२ इतिहासज्ञ शाही बिंसन बतलाता है कि यह गान्धारकी राजधानी पुष्कलवितीसे तक्षशिला; तक्षशिलासे सिन्धुको पार कर झेलम, व्यास, सतलज, यमुना और कदाचित हस्तिनापुर होती हुई गंगा तक पहुँचती थी। गंगासे यह सडक अनूपशहरके निकट दाई कन्नौजको जाती थी। यहाँसे कन्नौज, कन्नौजसे शक्तिशाली शहर प्रयोग और वहाँसे पाटलीपुत्रको चली जाती थी। लेखक रामायण में बतलाई गई एक अन्य सडक भी वर्णन करता है जो अयोध्यासे हस्तिनापुर होती हुई राजगृहको जाती थी। इन सडकोंके किनारे दूरी दर्शक पत्थर (mile stone) और छायेदार वृक्ष होते थे। १३ चीनीयात्री ह्वानच्वांग और फाहियान भी यहाँकी सडकोंका अपनी यात्रामें विस्तृत वर्णन करते हैं। १४ इतिहासवेत्ता स्मिथ तो यहाँ तक लिखते हैं कि छायेके लिए सडकोंके किनारे वट और आमके वृक्ष थे, हर आधकोस पर कुएँ और विश्रामालय और कितने ही मनुष्यों और पशुओंके आरामके लिए बावडियाँ (eat-ering place) बनी थीं। १५ हीरेन महोदय बतलाते हैं कि उनके किनारे फूल भी थे। १६

सडकें बनवाना आर्य राजाओंका एक धार्मिक कर्तव्य माना जाता था। कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें साम्पत्तिक तथा सैनिक दृष्टिसे इसका महत्त्व बताया है। मौर्य साम्राज्यका मुख्य राजपथ तामलुकसे प्रारम्भ होकर पाटलीपुत्र, प्रयाग, कान्यकुब्ज (कन्नौज) और तक्षशिला होते हुए पश्चिमोत्तर-प्रान्तस्थ पुष्कलावती नगरी-तक गया था। १७ कौटिल्य अर्थशास्त्रमें जलपथ और स्थलपथका उल्लेख है। १८ कौटिल्यने जल-मार्गसे स्थलमार्गको अत्यधिक उत्तम माना है। दुर्गोंमें तीन राज-पथ पश्चिमसे पूर्वकी ओर और तीन दक्षिणसे उत्तरकी ओर रहते थे। नगरों तथा दुर्गोंकी सडकें पत्थरों अथवा तारके पेडके तख्तोंसे फर्शबन्दी की हुई रहती थीं। १९ राजाका कर्तव्य वाणिज्य वीथियोंको राजवल्लभों, मजदूरों, तस्करों और कोतवालोंके उत्पीडनोंसे बचाना तो था ही, उसे यह भी देखना होता था कि पशुओंके झुण्डोंसे सडकें नष्ट न होने पावें। २०

कौटिल्यने व्यापारिक मार्गको वणिक् पथ कहा है। ये भी राज्यकी ओरसे बनाए और सुरक्षित रक्खे जाते थे। चार प्रधान वणिक् पथ थे। एक पथ उत्तरमें हिमालयकी ओर, दूसरा दक्षिणमें विन्ध्यकी ओर, तीसरा पश्चिम और चौथा पूर्वकी ओर जाता था। चाणक्यने उत्तरकी ओर जानेवाले मार्गसे दक्षिणकी ओर जानेवाले मार्गको अत्यधिक अच्छा कहा है। क्योंकि दक्षिणमें बहुत बहु मूल्य व्यापारिक पदार्थ, हीरा, मोती इत्यादि प्राप्त थे। सडकोंपर विशेषतः नगरके हर फाटक पर, चुंगी-घर बना रहता था।

---

१२ Pliny N. H VI, Page 21.

१३ "Inter course between India and the western world" Page 42.

१४ Water travels of yawan chwang and Fahian travels.

१५ 'Early history of India' P. 162.

१६ 'Historical Researches' Vol II, Page 279.

१७ Megasthenes, VI 3, Schwanbeck's Megasthenis Indika, translated by Mecrindle in 'Ancient India as described by Megasthenes and Arrian' (Trubner London 1877)

१८ कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण ७, अध्याय १२ प्रकरण ११६, पृष्ठ २९५ (बीब्लीओथिका संस्कृतमें प्रकाशित)

१९ Havell, Page 72.

२० कौटिलीय अर्थशास्त्र. आधि० २, अध्या० १ प्र० १९.

वहाँ 'शुल्काध्यक्ष' बाहरसे आनेवाले तथा बाहर जानेवाले व्यापारियोंके माल पर चुंगी और मोहर लगाता था। (कौटिलीय अर्थशास्त्र अधि० २, अध्याय २०, प्र० ३९) सडकोंकी स्वच्छताका बडा ध्यान रक्खा जाता था और नागरिक गणों पर इसका उत्तरदायित्व था। यदि कोई मनुष्य सडक पर कूडा-कर्कट फेंकता था तो उसे दण्ड दिया जाता था। २१

अशोकके राज्य-कालमें सडकोंकी शोभा और उपयोगिता और भी बढ गई थी। उसने यात्रियोंके आराम और सुख-का बढिया प्रबन्ध किया था। १४ वें शिलालेखमें २२ विशेषतः ७ वें स्तम्भ लेख २३ में इस सम्बन्धमें लिखा है कि—

सडकों पर मैंने पशुओं और मनुष्योंको छाया देनेके लिए वटवृक्ष लगवाए, आम्रवाटिकाएँ लगवाईं, आध आध कोस पर कुएँ खुदवाए, धर्मशालाएँ बनवायीं और जहाँ तहाँ पशुओं तथा मनुष्योंके आनन्दके लिए अनेक पौशालाएँ बैठायीं। '

अस्तु मौर्यकालीन सडकें आधुनिक उत्तमोत्तम सडकोंसे, किसी भी दृष्टिसे कम न थीं। गुप्तकालमें सडक-निर्माण-कला उत्कृष्टताकी उच्च-कोटि पर पहुँच गई थी। हरिवंश और विष्णुपुराणमें लिखा है कि शहरोंमें गाडियोंके जाने योग्य गलियाँ, (वीथियाँ) और मनुष्य-योग्य सडकें बनती थीं। २४

चीनी पर्यटक फाहियानने २५ गुप्त कालमें (ई० प० ४०५-४११) भारत-भ्रमण किया था। उसने अपने यात्रा-वर्णनमें लिखा है कि पथिकाश्रमोंसे संयुक्त, वृक्षोंसे आरोपित, लम्बी सडकें वर्तमान थीं। वह निर्विघ्न अनेक प्रदेशोंमें पर्यटन करता रहा। सडकों पर कोई भय नहीं था। २६

परन्तु हूणोंका आक्रमण होने पर देशमें बडा गडबड हो गया और मध्यकालीन हिन्दू-युगकी सडकें उतनी अच्छी न रह गई। सडकों पर पथिकगण डाकुओंके दलों-द्वारा ग्रस्त होने लगे। २७. हर्षवर्धनके राज्यकालमें (ई० प० ६०६-६४७) भारत-भ्रमण करनेवाले चीनी तीर्थयात्री ह्वेनत्सांगको कईएक ऐसे कष्टोंका सामना करना पडा था। किन्तु प्रदेशोंमें सुव्यवस्था थी, उनमें अच्छी सडकें थीं और दीन पथिकों और परिव्राजकोंके लिए सराएँ भी थीं। २८ आदि कालसे लेकर विगत शताब्दी तक भारत पधारनेवाले सभी विदेशी दर्शकोंने भारतीय सडकोंका वर्णन किया है। भारतमें सदैव ही सडकोंका जाल बिछा रहा है; स्ट्रावो, प्लेटो, अपालो, डोरस, हेवल स्मिथ आदि सभी इतिहास लेखक इसे स्वीकार करते हैं। २९ मध्यकालीन हिन्दू-भारतकी दशाका नीतिग्रन्थोंसे अच्छा ज्ञान होता है। उनमें सडकोंकी भी चर्चा मिलती है। ३० शुक्राचार्यके अनुसार ग्राममें चार प्रकारकी सडकें हो सकती थीं, पद्य, वीथि, मार्ग, और राजमार्ग और नगर या राजधानीमें दो प्रकारकी-मार्ग और राजमार्ग। ३१

---

२१ वही, अधि० २, अध्या० ३६, प्र० ५६.

२२ चतुर्दश शिलालेख, नं. २, V. A. Smith's 'Ashokathe Buddhist empire of India.'

२३ सप्तम स्तम्भ लेख-नं. ७, भाग ५, V. A. P. 161, Smith's Ashoka, P. 210.

२४ श्री विनोद विहारी दत्तकृत "Town planning in ancient India" में पुराणोंसे उद्धृत.

२५ Travels, ch. XXVII, gile's Version.

२६ Travels, ch. XXXVI, XXXVII.

२७ Walter's translation of 'Hiuen Tsang's accounts' Vol. I, P. 176.

२८ Ibid Vol. 1

२९ See, Strabo, chapt. XV, "History of Aryan rule in India" P. 36.

३० 'Shukranitisara' Gustave opport's edition, P 34.

३१ Ibid P. 35.

यहाँ तक तो भारतीय पर्वोंका विवेचन हुआ, अब कुछ अन्तर्राष्ट्रीय मार्गका भी वर्णन किया जाता है।

श्री राळीविन्सन चिर अनुसन्धानके पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं- " इतिहासकालसे भी पूर्वकालमें भारतके साथ पश्चिमके बडे व्यापारी मार्ग मिले हुए थे। "

खुश्कीके रास्तेका उल्लेख आपने इस भांति किया है- " भारतसे दर्रों द्वारा बलख व्यापारी बलख पहुँचते थे। बलखसे दरियाके रास्ते कास्पियन होकर इयूक्साइन पहुँचते थे, अथवा थलमार्गसे काफिलोंको उस सडकसे ले जाते थे जो कार्मानियन रेगिस्तानके उत्तरसे होकर कैसपियन गेट यूक्टिवोकट पहुँचती थी। राळी विन्सन महोदय गान्धार और पाटलीपुत्रको मिलानेवाली सडकका सम्बन्ध फारसकी सडकसे भी बतलाते हैं। ३२ श्री रीस डेविड्स कहते हैं कि पटना और बनारस काफिलोंके केन्द्र था। इन काफिलोंमें ५०० बैल गाडियाँ होतीं थीं। ये पूर्व और पश्चिम दोनों ओर जाया करते थे। ३३.

३२ " Intercourse between India and western world " Page 1–2.

३३ " The Journal of Royal Asiatic Society " for 1901.

स मा लो च ना

१ आर्य समाजका साप्ताहिक अधिवेशन

(द्वितीय संस्करण)

लेखक- श्री आचार्य विदेह

प्रकाशक- " विश्वदेवजी शर्मा

मूल्य तीन आने पृष्ठ सं. ६२

' वेद-संस्थान ' अजमेरका यह प्रकाशन ' देशभरकी आर्यसमाजोंके साप्ताहिक अधिवेशनोंमें मतैक्य स्थापन करने ' के उद्देश्य हुआ है। एक व्यावहारिक कठिनता या अव्यवस्थाकी ओर श्रीआचार्यजीने जो ध्यान दिया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जो सामाजिक कार्योंमें सक्रिय भाग लेते हैं, वे इस अव्यवस्था व कठिनताको अच्छी प्रकारसे जानते हैं। सचमुच इस अत्यन्त उपयोगी पुस्तिकाके प्रकाशनसे भारतके समाजोंमें व्यवस्था व क्रमैक्य स्थापित किया जा सकता है। हम अपने जीवनमें कबतक इस प्रकारका क्रमैक्य तथा समयका आदर करनेकी आदत डाल सकेंगे ? इस बातपर आज तो भी हमें विचार करनेकी आवश्यकता है। समयका निरादर करनेवाले समय (युग) से निरादृत हो जाते हैं। इस बातको क्या आजके आर्यसमाजी अनुभव नहीं करते ? क्या वे यह नहीं चाहते कि साप्ताहिक अधिवेशनोंकी उपस्थिति बढे तथा एक आकर्षक व्यवस्थामें वे सब प्रभूकी उपासना करें ?

श्री आचार्यजीके शब्दोंमें यदि कहा जाय तो वह अधिकांशमें सत्य है कि ' अधिवेशनोंका समय व क्रम सुविधाजनक तथा योग्यतानुसार होनेसे उपस्थिति अवश्य बढती है। '

छपाई अत्यन्त शुद्ध व स्वच्छ है। मुखपृष्ठ आकर्षक व कागज सुन्दर है। सब कुछ देखते हुए मूल्य थोडा है जो प्रचार दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी है।

२ सार्वभौम आर्यसाम्राज्य

लेखक- श्री आचार्य विद्यानन्द विदेह

प्रकाशक — " विश्वदेवजी शर्मा व्यवस्थापक ' वेद-संस्थान ' अजमेर पृष्ठ सं. ६८ मूल्य आठआने

इस पुस्तकमें १५ महत्त्वपूर्ण विषयोंपर वैदिक दृष्टिसे श्रीआचार्यजीने प्रकाश डाला है। प्रत्येक विषयका प्रारम्भ एक वेद मन्त्र देकर किया गया है, जिससे कि उसमें पूर्णतासी आगई है। पाठकोंके उपयोगार्थ विषयोंका उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा।

१ – विश्व कल्याण, २- आदर्शराष्ट्र, ३ -यज्ञाधार, ४- सार्वभौम राष्ट्रीयता, ५- नाम, ६ - आर्य साम्राज्य, ७- कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, ८- ध्वज, ९- विश्वशासन, १०- राष्ट्रवर्धन, ११- धर्मतन्त्र, १२ अमर साम्राज्य, १३- विजय भावना, १४- निर्वैरराष्ट्र, १५- उपनिवेश

'सार्वभौम आर्य साम्राज्य' के विषयमें श्री आचार्यजीका कथन है कि 'यह न कोई घोषणा पत्र है न नीतिनिर्धारण। यह तो विचार विमर्शके लिये स्नेह घृतमिश्रित एक स्वच्छ सात्विक सामग्री है, जो इस राष्ट्र यज्ञानुष्ठानमें वातावरणको सुगन्धित तथा चेतनामय बनानेमें सिद्ध, सुहुत और सार्थक होगी। आशा है शिक्षित नागरिक इस यज्ञाग्निके प्रकाशमें कोटिकोटि जनताका पथप्रदर्शन करके राष्ट्रोदय द्वारा विश्वोदय करनेका सत्कार्य करेंगे।'

पुस्तकके विषयोंके अनुरूप ही उसकी भाषा अत्यन्त मंजीलुकी और ललित है, जो अवश्य ही सम्पूर्ण पुस्तकको सरस एवं उच्च कोटिके साहित्यकी श्रेणीमें लाकर उपस्थित कर देती है। 'वेद संस्थान' के प्रत्येक प्रकाशनके अनुरूप यह भी छपाई-सफाईकी दृष्टिसे श्रेष्ठ प्रकाशन है और सस्ता भी।

३ – आचार्य पाणिनीके समय विद्यमान संस्कृत वाङ्मय

लेखक- श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक

प्रकाशक- आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर

मूल्य ।=) पृष्ठ सं. २५

यह पुस्तिका लेखकके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संस्कृत व्याकरण शास्त्रका इतिहास' के छठे अध्यायका पृथक् कृत भाग है। संस्कृत व्याकरणशास्त्रके विषयमें विद्वान लेखकने जो सुमहान् परिश्रम किया है, वह सर्वथा आदरास्पद है। वे अपने विषयके अधिकारी विद्वान् हैं। आचार्य पाणिनीके समयमें संस्कृत वाङ्मयके विभिन्न विषयोंकी कितनी विशाल ग्रन्थ राशि विद्यमान थी, इसका ज्ञान इस पुस्तक द्वारा भलीभांति होता है। अनुसन्धान करनेवाले विद्वानोंके लिये यह पुस्तिका बहुत सहायक सिद्ध होगी।

४ ऋग्वेदकी ऋक्संख्या

लेखक- श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक

प्रकाशक – आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर

मूल्य ॥) पृष्ठ सं. २१

ऋग्वेदकी ऋक्संख्या विवादास्पद विषय है। माननीय विद्वान लेखकने इस विषयपर पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानोंकी सम्मतियोंका अच्छा विश्लेषण किया है। वे लिखते हैं कि 'मैक्समूलरका ऋक्संस्करण उसके महान् परिश्रमका फल है, परन्तु उसमें कई दोष हैं। उनमें सबसे महान् दोष नैमित्तिक द्विपदाओंको तीन प्रकारसे छापना है। इसी दोषके कारण कई विद्वान ऋग्वेदकी शुद्ध ऋक्संख्याका निर्णय नहीं कर पाये। हमें यह कहते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि पं० सातवलेकरजी द्वारा प्रकाशित ऋग्वेदका द्वितीय संस्करण अभी तक प्रकाशित समस्त संस्करणोंमें श्रेष्ठतम है।'

आर्यजगत्के लिये यह गौरवका विषय है कि श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक जैसे निष्ठावान, कर्मठ एवं सुयोग्य लेखक उसके पास हैं। उनके ग्रन्थोंका आदर करना आर्य जगत्का परम कर्तव्य है।

'यदि आर्य समाजके प्रवर्तकने अपने अनुयायियोंको जातिभेदकी मूर्खता और हानियोंके विरुद्ध धम युद्ध करनेके लिये प्रोत्साहित करनेके अतिरिक्त और कुछ काम न किया होता तो भी उनको वर्तमान भारतके महान् नेताओंमेंसे नेताके रूपमें शामिल करना उचित होता।'

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् 'विन्टर्नीज'

'भारतमें शोचनीय स्त्रियोंकी स्थितिको सुधारनेके प्रयत्नमें भी दयानन्द कम उदार और साहसी न था। जिन सामाजिक कुरीतियोंकी वे शिकार हो रही थीं उनके विरुद्ध उसने स्त्रियोंकी और लोगोंको स्मरण कराया कि प्राचीन वीर युगमें उनकी स्थिति घरमें तथा समाजमें कमसेकम पुरुषके समान थी।'

'रोमारोलां'

४ ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ४८१

५ कृते चिदत्र मरुतो रणन्ताऽनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ४८२

६ उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ४८३

---

३ विश्वापिशः रोदसी पिशानाः- ये अपने तेजसे मानो सब विश्वको ही तेजस्वी बनाते हैं ।

४ शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते-अपनी शोभाके लिये सब एक जैसा गणवेश धारण करते हैं इसलिये सभी एक जैसे प्रकाशते हैं ।

वीर एक जैसा गणवेश पहने, एक जैसे रहें, सब एक जैसे चमकदार आयुध धारण करें तो वह समता बडा प्रभाव उत्पन्न करती है ।

[४] (४८१) हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (यत् वः आगः) जो आपके विषयमें पाप हमसे (पुरुषता कराम) पौरुष कर्म करनेके समय हुआ हो, (सा वः दिद्युत् ऋधक् अस्तु) तो भी वह आपकी तेजस्वी तलवार हमसे दूर ही रहे । (वः तस्यां अपि मा भूम) आपके उस शस्त्रके पास भी हम न रहें । (अस्मे वः चनिष्ठा सुमतिः अस्तु) हमारे पास आपकी अन्नदान करनेवाली बुद्धि रहे ।

हमसे कुच्छ पाप पौरुषके कर्म करनेके समय भी हुआ हो, तो भी उस अपराधके लिये वीरोंका शस्त्र हमपर न आ जाय । हमारे पास भी उनका शस्त्र कभी न आवे । हमारे पास उनकी अन्नदानकी सुमति ही आ जाये ।

[५] (४८२) (अनवद्यासः शुचयः पावकाः) अनिंदनीय शुद्ध और पवित्र (मरुतः) वीर मरुत् (अत्र कृते चित् रणन्त) यहां पर हमारे चलाये इस यज्ञकर्ममें आकर प्रसन्न हों । हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (नः सुमतिभिः प्र अवत) हमारी सुरक्षा अपनी उत्तम बुद्धियोंसे करो । (नः वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत) हमें अन्नोंसे पुष्ट होनेके लिये संकटोंसे पार करो ।

१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— वीर प्रशंसनीय शुद्ध और पवित्र आचरण करनेवाले हों ।

२ कृते रणन्त-- धर्मके कर्ममें वे आनन्दित हों । यज्ञादिक कर्मको देखकर वीर प्रसन्न होते रहे ।

३ सुमतिभिः प्र अवत— सबका कल्याण करनेकी उत्तम भावनासे सबको सुरक्षित रखो ।

४ वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत-- अन्नोंसे पुष्ट करनेके लिये लोगोंको सुरक्षित रखो । लोग सुरक्षित होंगे तो वे अन्नका सेवन करके हृष्टपुष्ट हो जांयगे ।

वीरोंके आचरण निर्दोष और पवित्र हों । वे दूसरे लोगोंके आचरण पवित्र करें । धर्म कर्मसे उनको आनन्द हो । सद्भावनासे वे लोगोंका संरक्षण करें और लोग अन्न सेवन करके हृष्टपुष्ट हों, इसलिये उनके संकटोंका निवारण भी ये वीर करें ।

[६] (४८३) (उत विश्वेभिः नामभिः स्तुतासः) और अनेक नामोंसे प्रशंसित हुए ये (नरः मरुतः) नेता वीर मरुत् (हवींषि व्यन्तु) अन्नोंको सेवन करें । हे वीरो ! (नः प्रजायै अमृतस्य ददात) हमारी प्रजाको अमरपन दो और (सूनृता रायः मघानि जिगृत) सत्य मार्गसे प्राप्त होनेवाले विशाल धन दे दो ।

१ नः प्रजायै अमृतस्य ददात-- हमारी प्रजाको अपमृत्युसे दूर रखो, हमारी प्रजा दीर्घजीवी बने ऐसा करो ।

१ सूनृता रायः मघानि जिगृत-- सत्यभाषण, धन और वैभव हमें मिले । सत्यमार्गसे प्राप्त होनेवाले धन और वैभव हमें प्राप्त हो ।

७ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन् त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४८४

(५८) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ४८५

२ जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ४८६

[७] (४८४) हे (स्तुतासः मरुतः) प्रशं-सनीय वीर मरुतो ! तुम (विश्वे) सभी वीर (सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती) सर्वत्र फैलनेवाले यज्ञमें ज्ञानियोंकी ओर अपने संरक्षणके साथ (आ जिगात) आओ। ज्ञानियोंको सुरक्षित रखो। (ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति) ये वीर स्वयं ही हम जैसे सेकडों मानवोंको बढाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण कर-नेके साधनोंसे सुरक्षित करो ।

१ सर्वताता सूरीन् ऊती आजिगात-- सर्वहित-कारी कर्ममें ज्ञानियोंके पास जाकर उनका संरक्षण अच्छी तरह करना वीरोंको योग्य है ।

२ ये त्मना शतिनः वर्धयन्ति-- जो स्वयं अकेला अकेला सेकडों मानवोंको बढानेमें सहायता करता है। वह वीर है। ऐसे वीर हमारे सहायक हों ।

[१] (४८५) (यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्) वह वीर दिव्य स्थानको अपने बलसे प्राप्त करता है। (साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत) साथ साथ कार्य करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो। (उत अ-वंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति) और वे वीर वंशविनाश रूप आपत्तिका नाश करते हैं। और (महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते) अपने महत्त्वसे द्यावा-पृथिवी को तथा सुखमय स्वर्गको प्राप्त करते हैं।

१ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः--जो शक्तिमान है वह दिव्य धामको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करता है।

२ साकं उक्षे गणाय प्र अर्चत-साथ साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो ।

३ अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति-वंशका नाश करनेवाली आपत्तिका वीर ही नाश करते हैं ।

४ महित्वा नाकं नक्षन्ते--वे वीर अपने निज महत्त्वसे स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं ।

[२] (४८६) हे (भीमासः तुविमन्यवः) भीषण रूपवाले अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण (अयासः मरुतः) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले वीर मरुतो ! (वः जनूः त्वेष्येण चित्) तुम्हारा जन्म तेजस्वितासे युक्त है। (उत ये महोभिः ओजसा प्रसन्ति) और जो अपने महत्त्वोंसे और बलसे प्रसिद्ध होते हैं, ऐसे (वः यामन्) तुम वीरोंके शत्रुपर आक्रमण करनेके समय (स्वर्दृक् विश्वः भयते) आकाश-की ओर दृष्टी रखकर सभी लोग भयभीत होते हैं।

१ भीमासः तुविमन्यवः अयासः--वीर भीषण शरीरवाले, अत्यंत उत्साहसे कार्य करनेवाले और शत्रुपर वेगसे आक्रमण करनेवाले हों ।

२ जनूः त्वेष्येण महोभिः ओजसा प्रसन्ति-- वीरोंके जन्म तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध होते हैं। इन गुणोंसे उनकी प्रसिद्धि होती है। जन्मस्वभावसे ये गुण उनमें होते हैं।

३ यामन् विश्वः भयते--इन वीरोंके आक्रमणको देख-कर सभी भयभीत होते हैं और (स्वः-दृक्) वे आकाशकी ओर देखते ही रहते हैं।

*

३	बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।	
	गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत	४८७
४	युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।	
	युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम्	४८८
५	ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।	
	यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम्	४८९
६	प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।	
	आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	४९०

---

[३] (४८७) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात) धनी लोगोंके लिये बडी आयु दो । (नः सुष्टुतिं जुजोषन् इत्) हमारी स्तुतिका सेवन तुम करो । (गतः अध्वा जन्तुं न तिराति) जिस मार्गसे तुम जाते हो वह मार्ग प्राणिमात्रको विनष्ट करनेवाला नहीं होता है । उसी तरह (नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत) हमारा संवर्धन स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे तुम करते रहो ।

१ **मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात**--धनी लोगोंको बडी आयु दो । धनी लोग अल्प आयुमें मरते हैं, इसलिये उनको ऐसे मार्गसे चलाओ कि जिससे उनकी आयु अतिदीर्घ हो जाय । धनी लोगोंके पास उत्तम (वयः) अन्न होता है, उसके सेवनसे उनको (बृहत् वयः) बडी आयु प्राप्त होनी चाहिये । परंतु वे अल्पायु होते हैं, इसलिये वह दोष उनसे दूर हो ।

२ **गतः अध्वा जन्तुं न तिराति**—वीर जिस मार्गसे जाते हैं उस मार्गसे जानेसे किसीका भी नाश नहीं होता है ।

३ **स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः तिरेत**—स्पृहणीय संरक्षक साधनोंसे हमारी- सबकी-सुरक्षा करो । किसीका नाश न हो, हानि न हो, रोगादि न बढें और सब लोग आनन्द प्रसन्न हों ।

[४] (४८८) हे मरुत वीरो ! (युष्मा-ऊतः) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ (विप्रः शतस्वी सहस्री) ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । (युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः) तुम्हारे द्वारा संरक्षित हुआ घोडा भी शत्रुका पराजय करनेमें समर्थ होता है । (युष्मा-ऊतः संराट् वृत्रं हन्ति) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ सम्राट् घेरनेवाले शत्रुका भी नाश करता है । हे (धूतयः) शत्रुको हिलानेवाले वीरो ! (वः तत् देष्णं प्र अस्तु) तुम्हारा वह दान हमारे लिये पर्याप्त हो ।

जिसको वीरोंका संरक्षण प्राप्त होता है वह सुरक्षित होता है और प्रभावी भी होता है ।

[५] (४८९) (मीळ्हुषः रुद्रस्य तान् आ विवासे) बलवान रुद्रके उन वीरोंकी मैं सेवा करता हूं । (मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते) वीर मरुत हमें अनेक प्रकारसे और बार बार सहायता देते हैं । हमारे साथ मिलकर कार्य करते हैं । (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त अथवा (यत् आविः) जिन प्रकट पापोंके कारण वे वीर (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं उन (तुराणां एनः अव ईमहे) शीघ्रता करनेवालोंसे हुआ पाप हम अपनेसे दूर करते हैं ।

जो भी पाप गुप्तरीतिसे अथवा प्रकटरीतिसे होता हो, उसको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

[६] (४९०) (मघोनां सुस्तुतिः) धनाढ्य वीरोंकी यह सुन्दर स्तुति है । (सा वाचि प्र) वह हमारे मुखमें सदा रहे । (मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त) वीर मरुत् इस सूक्तका सेवन करें । सुनें हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! हमारे (द्वेषः आरात् चित्) द्वेषाओंको हमसे दूर करो । और (युयोत)

(५९) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-११ मरुतः; १२ रुद्रः (मृत्युविमोचनी ऋक्)। प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री, १२ अनुष्टुप्।

१ यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन् मरुतः शर्म यच्छत ४९१

२ युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ४९२

३ नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ४९३

४ नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ४९४

उनको पृथक करो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो।

वीर बलवान् बनें और वे जनसमाजके द्वेष्टा और शत्रुओंको दूर करें। समाजको सुरक्षित रखें।

[१] (४९१) हे (देवासः) देवो! (यं इदं इदं त्रायध्वे) जिसे तुम इस तरह सुरक्षित रखते हो। और (यं च नयथ) जिसे तुम अच्छे मार्गसे ले जाते हो, हे अग्ने! हे वरुण! हे मित्र! हे अर्यमन्! तथा हे (मरुतः) वीर मरुतो! (शर्म यच्छत) उसे सुख दे दो।

मनुष्यको संरक्षण चाहिये और सुख चाहिये।

[२] (४९२) हे देवो! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर (प्रिये अहनि ईजानः) शुभ दिवसमें यज्ञ करनेवाला (द्विषः तरति) शत्रुओंको लांघ जाता है। शत्रुओंका पराभव करता है। (यः वः वराय) जो तुम्हारे श्रेष्ठ वीरके लिये (महीः इषः विदाशति) बहुतसा अन्न देता है, (सः क्षयं प्र तिरते) वह विनाशको लांघता है, वह सुरक्षित होता है।

जो वीरोंके द्वारा सुरक्षित होता है, उसके शत्रु दूर होते हैं और वह अपने घरबारको संरक्षित पाता है।

[३] (४९३) हे (मरुतः) वीर मरुतो! (वसिष्ठः वः चरमं चन) यह वसिष्ठ तुम्हारे अन्तिम वीरका भी (नहि परि मंसते) तिरस्कार नहीं करता। तुम सबका संमान करता है। (अद्य अस्माकं सुते) आज हमारे सोमयागमें सोमरस निकालनेपर तुम (कामिनः विश्वे सचा पिबत) अपनी इच्छाके अनुसार सब एक स्थानपर बैठकर उस रसका पान करो।

कोई भी किसी वीरका अपमान न करे। सबका समान रीतिसे संमान करे और सबको समान रीतिसे खानपान देवे।

[४] (१९४) हे (नरः) नेता वीरो! तुम (यस्मै अराध्वं) जिसको संरक्षण देते हैं, वह (वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति) तुम्हारी संरक्षण करनेकी शक्तिको युद्धोंमें कम नहीं करता। वह उसके लिये पर्याप्त होती है। (वः नवीयसी सुमतिः) तुम्हारी नवीन सुमति (अभि अर्वत) हमारी ओर आवे। (पिपीषवः तूयं आयात) सोमपान करनेकी इच्छासे तुम हमारे पास आ जाओ। और यथेच्छ रसपान करो।

वीरोंकी शक्ति युद्धोंमें बढती है। युद्धोंके समय वीर लोगोंका उत्तम संरक्षण करते हैं।

५	ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये । इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन	४९५
६	आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु । अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै	४९६
७	सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् । विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः	४९७
८	यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति । द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम्	४९८
९	सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः	४९९

[५] (४९५) हे (घृष्वि-राधसः मरुतः) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीरो ! (अन्धांसि पीतये सु ओ यातन) अन्नरसका सेवन करनेके लिये तुम मिलकर यहां आओ। (हि वः इमा हव्या ररे) क्योंकि तुम्हें ये अन्न मैं देता हूं। अतः तुम अन्यत्र (मो सु गन्तन) कहीं भी न जाओ।

संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीर हों। युद्धोंमें वीर विजयी होनेवाले हों।

[६] (४९६) (स्पार्हाणि वसु दातवे) स्पृहणीय धन देनेके लिये (नः अवित) हमारे पास आओ। (नः बर्हिः आ सीदत च) हमारे आसनों पर आकर बैठो। हे (अस्रेधन्तः मरुतः) अहिंसक वीरो ! (इह मधौ सोम्ये) यहां इस मधुर सोमरस पानमें (स्वाहा) अपना भाग स्वीकार करो और (मादयाध्वै) आनन्दित हो जाओ।

वीर लोगोंको धनका दान करें और अन्नरसोंका स्वीकार करें। उनका पान करके आनंदित हो जांय।

[७] (४९७) (सस्वः चित् हि) गुप्त स्थानपर बैठकर भी अपने (तन्वः शुम्भमानाः) शरीरोंको सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील पृष्ठाः हंसासः) नील पीठवाले हंसोंके समान (सवने मदन्तः) सवनमें सोमपान करके आनंदित होते हैं। (रण्वाः नरः न) रमणीय नेताओंकी तरह (आ अपप्तन्) हमारे पास ये आ जांय और आपका (विश्वं शर्धः) सब बल (मा अभितः नि सेद) मेरी चारों ओर रहे।

वीर गणवेश धारण करके सुशोभित हो जांय। और वे सब लोगोंका संरक्षण करें। उनका बल इसी कार्यके लिये है। लोग उनको आदरसे उत्तम खानपान देकर उनका संमान करें। उसके सेवनसे वे आनंदित होते रहें।

[८] (४९८) हे (वसवः मरुतः) बसानेवाले वीर मरुतो ! (दुर्हृणायुः तिरः) अतीव क्रोधी तथा तिरस्कारके योग्य (यः नः चित्तानि) जो हमारे चित्तोंका (अभि जिघांसति) चारों ओरसे नाश करना चाहता है, (सः द्रुहः पाशान्) उस द्रोहकारीके पाशोंसे (प्रति मुचीष्ट) हमें तुम मुक्त करो और द्रोहकारीको (तं तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तन) मार डालो।

जो शत्रु हमारे अन्तःकरणोंका नाश करना चाहता है, उसके पाशोंसे छूटना चाहिये, वे पाश शत्रुपर (प्रतिमुच) उलटा देने चाहिये और उसी शत्रुका नाश करना चाहिये।

[९] (४९९) हे (सान्तपनाः) शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा (रिशादसः मरुतः) शत्रुका नाश करनेवाले वीर मरुतो ! तुम (इदं तत् हविः जुजुष्टन) इस हविष्यान्नका सेवन करो और (युष्माकं ऊती) तुम्हारी संरक्षणकी शक्ति बढाओ।

१०	गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः	५००
११	इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे	५०१
१२	त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।	
	उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्	५०२

वीर शत्रुको ताप देनेवाले तथा उनका नाश करनेवाले होने चाहिये । उनको अपनी शक्ति बढानी चाहिये ।

[१०] (५००) हे (गृहमेधासः) गृहस्थ-धर्मका पालन करनेवाले (सु-दानवः मरुतः) उत्तम दानी मरुत् वीरो ! तुम (युष्माकं ऊती आगत) अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ ।

वीरोंको गृहस्थधर्मका पालन करना चाहिये और दान भी देना चाहिये । इसी तरह अपने संरक्षणके सामर्थ्यसे सबकी सुरक्षा भी करनी चाहिये ।

[११] (५०१) (स्वतवसः) अपने स्वकीय बल-से युक्त (कवयः) ज्ञानी (सूर्यत्वचः) सूर्यके समान तेजस्वी (मरुतः) वीर मरुत् (इह इह यज्ञं वः) यहां यज्ञ करके तुम्हें मैं (आवृणे) वरण करता हूं, पास लाता हूं, सन्तुष्ट करता हूं ।

वीर अपने बलसे बढें, ज्ञानी हों, अनाडी न रहें, देश-काल-परिस्थितिका ज्ञान प्राप्त करें, सूर्यके समान तेजस्वी हों ।

[१२] (५०२) (सुगन्धि) उत्तम यशस्वी (पुष्टिवर्धनं) पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले (त्र्यंबकं) तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी (यजामहे) हम उपासना करते हैं । यह देव (उर्वारुकं इव) ककडीको मुक्त करते हैं उस तरह (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्युके बंधनसे हमें मुक्त करे, परंतु (अमृतात् मा) अमरत्व-से कभी न छुडावे, परंतु हमें अमरत्वसे संयुक्त करें ।

(त्रि-अंबकः) तीन प्रकारके भयोंसे संरक्षण होना चाहिये, अपने ही प्रमादोंका भय, राष्ट्रके दोषोंका भय और जागतिक नैसर्गिक विपत्तियोंका भय । इन तीन भयोंसे संरक्षण होना चाहिये ।

(**पुष्टि-वर्धनः**) जिनसे शरीरादिका पोषण होता है उन अन्नादि साधनोंका राष्ट्रमें संरक्षण करना चाहिये और संवर्धन भी करना चाहिये । ये पुष्टिके साधन सबको मिले ऐसा करना चाहिये ।

(**सु-गन्धिः**) अपना सुवास-अपने सत्कर्मका यश चारों ओर फैलना चाहिये । शत्रुका (गन्धनं) नाश करना चाहिये ।

मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय—मृत्युके बंधनसे मुक्त होना चाहिये । अपमृत्युका भय दूर करना चाहिये । राष्ट्रके लोगोंकी औसद आयु बढानी चाहिये ।

मा अमृतात्—अमरपनसे अपने आपको कभी पृथक् नहीं करना चाहिये । ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव प्राप्त करना चाहिये ।

उर्वारुकं इव—फल परिपक्व होनेके पश्चात् स्वयं छुट जाता है, बन्धनमें नहीं रहता, उस तरह स्वयं परिपक्व होकर बंधनसे छुटना चाहिये ।

व्यक्ति और राष्ट्रकी उन्नतिके उपदेश ये हैं । इनको आचरणमें ढालना चाहिये ।

यह मंत्र मृत्यु भय दूर करनेवाला है । इसलिये अपमृत्युका भय दूर करनेके लिये इसका पाठ वा जप करते हैं ।

॥ यहां मरुत् प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[४] मित्रावरुण–प्रकरण

(६०) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ सूर्यः, २-१२ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ५०३

२ एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ५०४

---

[१] (५०३) **हे सूर्य! (उद्यन् अद्य यत्) उदय होते ही तुम आज हमें (अनागाः ब्रवः) निष्पाप करके घोषित करो। हे (अदिते) अदीन देव! (वयं देवत्रा) हम देवोंके बीचमें (मित्राय वरुणाय सत्यं) मित्र और वरुणके लिये सच्चे रूपसे प्रिय (स्याम) हों। हे (अर्यमन्) आर्य मनवाले देव! हम (गृणन्तः) स्तुति गाते हुए (तव प्रियासः स्याम) तुम्हारे लिये प्रिय हों।**

१ '**सूर्यः**' सूर्य देव सबको प्रेरणा देता है, कर्म करनेका उत्साह बढाता है। सूर्यका उदय होनेके पूर्व चोर, डाकू आदि कुकर्मकारी लोग उपद्रव मचाते हैं, और सूर्यका उदय होते ही यज्ञ आदि सत्कर्म शुरू होते हैं। अतः सूर्य सत्कर्मका प्रेरक है।

२ **सूर्य! उद्यन् अद्य अन्-आगाः ब्रवः**—सूर्य! तुम उदय होते ही हमें निष्पाप करके घोषित करो। हम निष्पाप हों, हम पाप कर्म कभी न करें।

३ **वयं देवत्रा सत्यं**-देवोंमें हम सत्य करके प्रसिद्ध हों। हम सत्यनिष्ठ हैं ऐसी सर्वत्र प्रसिद्धि हो, हम सचमुच सत्यका पालन करें।

४ **हे अर्यमन्! तव प्रियासः स्याम**-आर्य मनवालोंको हम प्रिय हों। जो श्रेष्ठ मनवाले हैं उनको हम प्रिय हों, ऐसे हम श्रेष्ठ बन जांय।

हम आज ही निष्पाप बनें। अच्छा कार्य करना हो तो हम आज ही शुरू करें। मनुष्योंको निष्पाप होना चाहिये। दीनता छोडनी चाहिये। '**सूर्य**' सबको सत्कर्ममें प्रेरित करता है, '**अ-दितिः**' अदीन है, श्रेष्ठ है, सबका '**मित्र**' है, सबमें '**वरुणः**' वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है, '**अर्य-मा**' आर्य मनवाला है, श्रेष्ठ मनवाला है, स्वामीभावसे युक्त मनवाला है, दासभावसे सदा दूर है। इस तरहके देवको हम प्रिय हों। यह तब हो सकता है कि जब हम "सत्कर्म प्रेरक, अदीन, मित्र, वरिष्ठ, आर्य मनवाले" होंगे। इसीलिये उपासक इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करें।

[१] (५०४) **हे मित्र और वरुण! (एषः स्यः) यह है वह (नृचक्षाः सूर्यः) मानवोंके आचरणोंको देखनेवाला सूर्य (उभे अभि ज्मन् उदेति) दोनों द्यावापृथिवीके बीचके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेवाला उदयको प्राप्त होता है। यह (विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः) सब स्थावर जंगम जगत्का संरक्षण करनेवाला है। यह (मर्तेषु ऋजु वृजिना च पश्यन्) मानवोंके सुकृतों और दुष्कृतोंको देखता है।**

मानव धर्म- मनुष्योंके व्यवहारोंका निरीक्षण किया जाय, सब लोगोंका संरक्षण करनेका प्रबंध उत्तम प्रकारसे हो और अच्छे और बुरेकी परीक्षा करनेका प्रबंध हो। इस तरह व्यवस्था करनेसे मनुष्योंका कल्याण होगा।

जगत्में परमेश्वरद्वारा बनी हुई व्यवस्था कैसी है वह देखिये—

१ **एषः नृ-चक्षाः सूर्यः उभे ज्मन् उदेति**—यह मनुष्योंके सत्य असत्य व्यवहारका निरीक्षण करनेवाला सूर्य है, वह द्यु और पृथिवीके बीचके मार्गसे चलता है और सबके

३ अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ५०६

व्यवहार देखता है। मानवोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करनेवाला एक अधिकारी यहां विश्वमें नियुक्त किया गया है। राज्यशासनमें ऐसा एक अधिकारी रहे कि जो लोगोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करे।

१ **विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः**—यह सूर्य सब स्थावर जंगमका संरक्षक है। स्थावर जंगम, सत् असत् आदि सबका वह संरक्षण करता है। राज्यमें एक अधिकारी ऐसा रहे कि जो राष्ट्रके सब स्थावर जंगम पदार्थोंका तथा सब प्रजाजनोंका संरक्षण करे।

३ **मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्**—मनुष्योंमें सरल कौन हैं और कुटिल कौन हैं, इसका निरीक्षण करनेवाला यह अधिकारी है। राष्ट्रके राज्यशासनमें ऐसा एक अधिकारी हो जो सरल व्यवहार करनेवाले और कुटिल व्यवहार करनेवाले लोगोंका निरीक्षण करे, और निश्चय करे कि ये लोग ऐसे सरल हैं और ये कुटिल, ठग या डाकू हैं। कई स्थान पर सत्य असत्य, ऋजु वृजिन, सुर असुर, देव राक्षस ऐसे शब्दोंद्वारा यही भाव बताया है। उन स्थानोंके मन्त्रोंका अनुसंधान करना यहां आवश्यक है।

यहां राष्ट्रशासनके व्यवहारके लिये तीन अधिकारियोंकी नियुक्ति करनेके विषयमें कहा है, (१) सर्व साधारण निरीक्षक, (२) सबका संरक्षक, (३) लोगोंके सरल और कपटी व्यवहारोंकी जांच करनेवाला। राष्ट्रका शासन व्यवहार करनेके लिये जो अनेक अधिकारी आवश्यक होते हैं, उनमें इन तीन अधिकारियोंकी नियुक्तिकी सूचना इस मंत्रने दी है।

विश्वशासनमें ईश्वरने क्या प्रबंध किया है, यह वर्णन मन्त्रमें है। उसको देखकर मनुष्य अपने राष्ट्रप्रबंधमें वैसी व्यवस्था करे। मन्त्रके अर्थसे यही प्रेरणा मनुष्यको मिलती है।

[३] (५०६) **हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवो ! (सधस्थात् सप्त हरितः अयुक्त) साथ साथ देवोंके रहनेके स्थानसे-अन्तरिक्षसे आनेके लिये-सात घोडियोंको सूर्यने अपने रथको जोता है। (याः घृताची ईं सूर्यं वहन्ति) जो जलको देती हुई सूर्यको ले चलती हैं। (यः युवाकुः धामानि जनिमानि) जो तुम दोनोंको संतुष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला सब स्थानों और जन्मोंको (यूथा इव) गोपालकके समान (संचष्टे) सम्यक् रीतिसे देखता है।**

' सध-स्थं ' (सह-स्थानं)—सब देवोंका मिलकर एक स्थान है, जहां वे रहते हैं। यह देवसभाका स्थान है। इसी तरह मनुष्योंका भी एक स्थान होना चाहिये, जहां सब लोग आकर मिलें, बातें करें, उन्नतिका विचार करें। प्रत्येकका रहनेका स्थान पृथक् पृथक् हो, परंतु सबका सभास्थान एक हो, वहां वे लोग समान अधिकारसे आयें, बैठें और विचार करें।

१ **' सप्त हरितः अयुक्त '**-सूर्यके रथको सात घोडे जोते जाते हैं। सूर्य किरणमें सात रंग हैं, वर्षके छः ऋतु और अधिक मासका सातवाँ ऋतु मिलकर वर्षके सात ऋतु हैं, ये भी सात घोडे माने हैं। आत्मा सूर्य है, उसका रथ शरीर है। इसको इन्द्रियोंके घोडे जोते हैं। दो आंखें, दो नाक, एक वाक् ये सात इंद्रियाँ ज्ञान रखके ज्ञानी घोडे हैं। दो हाथ, दो पांव, गुदा, शिश्न और भक्षण करनेका मुख ये सात कर्म रखके सात घोडे हैं। इस तरह सप्त अश्वकी कल्पना करते हैं।

२ **घृताचीः हरितः**—जल देनेवाले घोडे। सूर्यके किरण ये घोडे हैं। किरणोंसे बाष्प, बाष्पके मेघ, मेघोंसे वृष्टी। इस तरह ये घोडे-किरण वृष्टी करते हैं। **'घृत—अचीः हरितः'** का अर्थ पसीनेसे तर हुए घोडे, ऐसा भी होता है। रथको जोते घोडे पसीना आनेसे तर हुए हैं और रथको खींच रहे हैं। वीरके रथके घोडे ऐसे वेगसे जांय, कि वे पसीनेसे तर हों।

३ **युवा—कुः**— यह आपके साथ मित्रता करनेवाला वीर है। एक मित्रके साथ स्नेह संबंध रखता है और दूसरा वरुण-वरिष्ठके साथ स्नेह रखता है। मनुष्य भी अपना मित्रताका संबंध बढावे और श्रेष्ठोंके साथ संबंध जोडे।

४ **धामानि जनिमानि वेद**—स्थानों और जन्मोंको जानता है। **' धाम '**— स्थान, घर, देश। इनको जानना चाहिये। **' जनिमानि '**-जन्म, उत्पत्ति, जीवन कैसा है

४	उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।	
	यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः	५०६
५	इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।	
	इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः	५०७
६	इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।	
	अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति	५०८

यह भी जानना चाहिये। किस देशका और किस कुलका जन्म है यह भी विदित होना चाहिये। अपना जिनसे संबंध है उनके धाम और जन्म जानने चाहिये।

५ यूथा इव धामानि जनिमानि वेद—गौओंके झुण्डका पालक जिस तरह गौके धाम और जन्म जानता है। यह गौ किस देशकी और किस वंशकी है यह गौका पालक जानता है और इस कारण प्रत्येक गौका वांशिक मूल्य जानता है। उस तरह राष्ट्रका शासक अथवा नेता अपने देशके वीरोंके धामों और स्थानोंको जाने। 'गौ' भी 'घृताची' (घृत-अची) है। अधिक प्रमाणमें घी देनेवाली। जो अधिक दूध देती है और जिसके दूधमें अधिक मात्रामें घी रहता है।)

[४] (५०६) (वां पृक्षासः मधुमन्तः उत् अस्थुः) आपके लिये पुरोडाश आदि अन्न मीठे बनाये हैं। (सूर्यः शुक्रं अर्णः अरुहत्) सूर्य शुभ्र प्रकाशके साथ आकाशमें चढा है। (यस्मै आदित्याः अध्वनः रदन्ति) जिस सूर्यके लिये आदित्य मार्गको बनाते हैं। मित्र, वरुण, अर्यमा ये वे परस्पर प्रीति करने वाले आदित्य हैं।

आदित्य बारह महिने हैं जिनके नाम मित्र, वरुण, अर्यमा आदि हैं। इन महिनोंमें दक्षिणायन उत्तरायणके अनुसार सूर्यका मार्ग बदलता रहता है, इसलिये कहा है कि ये आदित्य सूर्यका मार्ग बनाते हैं।

[५] (५०७) (इमे भूरेः अनृतस्य चेतारः सन्ति) ये आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं। (इमे मित्रः वरुणः अर्यमा ऋतस्य दुरोणे ववृधुः) ये मित्र वरुण अर्यमा आदि आदित्य सत्यके स्थान-में बढनेवाले हैं। ये (अदितेः पुत्राः अदब्धाः शग्मासः) अदितिके पुत्र किसीसे न दब जानेवाले और सुख बढानेवाले हैं।

१ भूरेः अनृतस्य चेतारः—असन्मार्गके विनाशक वीर हों।

२ ऋतस्य दुरोणे ववृधुः—सत्यके स्थानको बढानेवाले वीर हों। सत्यका पक्ष ले और असत्यके पक्षका त्याग करें।

३ अदितेः पुत्राः शग्मासः अदब्धाः—अदीन वीर माताके वीर पुत्र सुख बढानेवाले और न दब जानेवाले हों। शत्रुके दबावसे न दबें और सुख बढानेके व्यवसाय करनेवाले तरुण वीर हों।

[६] (५०८) (इमे मित्रः वरुणः) ये मित्र वरुण, अर्यमा आदि आदित्य स्वयं (दूळभासः) किसीसे दबाये जानेवाले नहीं हैं। (अचेतसं दक्षैः चित् चितयन्ति) अज्ञानीको भी अपने सामर्थ्यों-से ज्ञानी बनाते हैं। और (सुचेतसं क्रतुं अपि वतन्तः) उत्तम बुद्धिमान और महान पुरुषार्थ करनेवाले उद्यमी पुरुषको प्रगति संपन्न करते हैं, (अंहः चित् तिरः) पापीको पीछे गिराते और सुकर्म कर्ताको (सुपथा नयन्ति) उत्तम मार्गसे उन्नतिको पहुंचाते हैं।

मानवधर्म— वीरोंको उचित है कि वे कदापि किसी शत्रुके दबावसे न दबें। अज्ञानियोंको अनेक उपायों-से ज्ञान संपन्न बना दें और सुस्तोंको पुरुषार्थी और प्रयत्न-शील बना दें। पापियोंको पीछे हटेल दें और पुण्य कर्म कर्ताको उत्तम मार्गसे उन्नतिके शिखरपर पहुंचावें।

१ इमे दूळभा (दुः-दभाः)—ये वीर माताके वीर पुत्र स्वयं किसी भी शत्रुसे न दबनेवाले हैं। किसी भी शत्रुके कैसे भी दबावसे न दबनेवाले वीर हों।

१ अ-चेतसं दक्षैः चितयन्ति—ये वीर अज्ञानीको अपने बलोंसे ज्ञानवान बना देते हैं। अज्ञानीको अनेक प्रकारके ज्ञान देनेके साधन इनके पास हैं। वीर अपनी शक्तिका उपयोग करके अज्ञानियोंको ज्ञानी बना दें।

७ इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ५०९

३ सु—चेतसं क्रतुं वतन्तः—उत्तम ज्ञानी कुशल कर्मकर्ताको प्रगति पथपर ले जाते हैं। उन्नति युक्त करते हैं। वीर ज्ञानी बनें और उत्तम कर्म करके अपनी प्रगति करें।

४ अंहः चित् तिरः नयन्ति—पापियोंको पीछे ढकेल देते हैं। उनको प्रतिष्ठाके स्थानपर नहीं रखते। पापी लोगोंका तिरस्कार करते हैं।

५ सुक्रतुं सुपथा नयन्ति—उत्तम पुण्य कर्म करनेवालेको उत्तम मार्गसे ले जाते हैं। उन्नतिको पहुंचाते हैं।

राष्ट्र शासनसे इस तरहका प्रबंध होता रहे। राष्ट्र शत्रुके दबावसे न दबे। ज्ञान प्रसार द्वारा सब लोगोंको ज्ञान संपन्न तथा कर्म कुशल बना देवें। पापीको दण्ड मिले, पुण्यवानोंका प्रगतिका मार्ग खुला रहे। राष्ट्र शासनका प्रबंध इस तरह हो।

[७] (५०९) (इमे दिवः पृथिव्याः) ये द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले वीर (अनिमिषा अचेतसं चिकित्वांसः) विलंब न करते हुए अज्ञानीको ज्ञानवान बनाते हैं और (नयंति) शुभ मार्गसे ले जाते हैं। शुभ कर्ममें प्रवृत्त करते हैं। (प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति) निम्न प्रदेशमें भी नदियां गहरी होती हैं। संकटके समयमें भी अधिक कष्ट होते हैं। अतः वे वीर (अस्य विष्पितस्य नः पारं पर्षन्) इस व्यापक कर्मके पार हमें ले जांय। इसकी उत्तम समाप्ति करनेमें हमारे सहायक हों।

१ इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति—ये ज्ञानी वीर द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बनाते हैं, और उन्नतिके मार्गसे चलाते हैं। अज्ञानीको ज्ञानसंपन्न बनाना चाहिये और उससे शुभ कर्म करनेमें प्रवृत्त करना चाहिये।

जिससे द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीके पदार्थोंकी विद्या जानी जाती है वह विद्या है। अध्यात्म, आधिभूत और आधिदैवत संबंधके जो कर्म करने होते हैं वह कर्म मार्ग है। ज्ञानसे इस कर्म मार्गमें मनुष्यकी प्रवृत्ती होती है। मनुष्यके ज्ञानमें इस त्रिलोकीके पदार्थोंकी विद्या समाविष्ट होती है। और कर्ममें व्यक्ति और समष्टिके संबंधके कर्तव्योंका समावेश होता है।

अज्ञानी (अ-चेतः) वे हैं कि जो इस विद्याको नहीं जानते और ' चिकित्वान् ' वे हैं कि जो इस विद्याको जानते हैं। जो जानते हैं वे इस विद्याको जाननेवालोंको सिखा देवें और ज्ञान तथा कर्म मार्गोंमें प्रवीण बना देवें।

२ अचेतसं चिकित्वांसः नयन्ति—अज्ञानीको ज्ञानी बनाकर शुभ मार्गसे ले जाते हैं। यह है जनताकी उन्नतिका क्रम। जो ज्ञान जिसके पास है वह दूसरोंको सिखाकर उनको ज्ञानी तथा कर्ममें कुशल बनाना उसका कर्तव्य है। राष्ट्रके शासन प्रबंधसे यह सब सुव्यवस्थित होना चाहिये।

३ प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति—निम्न प्रदेशमें भी नदियां अधिक गहरी होती हैं। उनसे पार होना वहां भी कठिन होता है। संकटके समयमें भी अधिक कष्टोंके समय उपस्थित होते हैं। उनको डरना योग्य नहीं है। उनसे पार होनेका उपाय ढूंढना चाहिये।

४ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षन्— इस विशेष गहरी नदीके पार हमें ये वीर ले चलें। ' वि-ष्पित ' विशेष गहरी अथवा विशेष विस्तीर्ण। इसके पार पहुंचना चाहिये। ज्ञानी वीर इसके पार स्वयं जाते हैं और दूसरोंको भी पहुंचाते हैं। संकटोंके पार पहुंचना चाहिये।

विस्तीर्ण और गहरी नदीके पार होना कठिन है। परंतु प्रयत्नसे वीर पुरुष नदीके पार होते ही हैं। इसी तरह दुःखके पार मनुष्य जाते हैं। यह सब प्रयत्नसे साध्य होनेवाला है।

दिवः पृथिव्याः चिकित्वांसः—द्युलोकमें सूर्य, सूर्य-किरण, प्रकाश, तारागण आदि पदार्थ हैं, अन्तरिक्षमें वायु, विद्युत्, मेघ, वर्षा आदि पदार्थ हैं, पृथिवीपर भूमि, जल, औषधि, अन्न आदि पदार्थ हैं। इनके गुणधर्मोंके ज्ञानका नाम विद्या है। यह ज्ञान दुःख दूर करनेवाला है। त्रिलोकीमें सहस्रों पदार्थ हैं और इनके ज्ञानसे नाना प्रकारकी विद्याएँ सिद्ध होती हैं जो मानवोंकी उन्नति करनेवाली हैं। राष्ट्रके शिक्षा विभागके द्वारा इस ज्ञानका प्रसार राष्ट्रमें होना चाहिये।

८ यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तास्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ५१०
९ अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ५११
१० सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ५१२

[८] (५१०) (यत् गोपावत् भद्रं शर्म) जो संरक्षण करनेवाला कल्याणपूर्ण सुख (अदितिः मित्रः वरुणः) अदीन मित्र, वरुण, आर्यमा आदि देव (सुदासे यच्छन्ति) उत्तम दान करनेवाले के लिये देते हैं, (तस्मिन्) उस कर्ममें (तोकं तनयं आदधानाः) बालबच्चोंको हम धारण करते हैं, हम उस कर्ममें पुत्रोंको प्रेरित करते हैं। हम (तुरासः) त्वरासे काम करनेके समय (देवहेळनं मा कर्म) देवोंको क्रोध आने योग्य कर्म हम कभी न करें।

मानवधर्म- मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करनेका यत्न करें कि जिससे अपनी सुरक्षा हो, कल्याण हो, उन्नति हो। परंतु कभी विपरीत परिणाम न हो। ऐसे शुभ कर्मोंमें अपने बालबच्चोंको प्रवीण बना दें। शीघ्रतासे कार्य करनेसे ऐसा कोई कुकर्म अपने हाथसे होने न दें कि, जिससे ज्ञानियोंको बुरा लगे।

१ गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति—संरक्षण करनेवाला, कल्याण करनेवाला और अधिक उच्च अवस्था देनेवाला सुख उसको प्राप्त होता है कि जो उत्तम दान सुपात्रमें देता है। जिससे अपना नाश होनेवाला हो, जो हानि करनेवाला हो, जिससे हीन अवस्था होती हो वैसा सुख मिलता हो तो भी उसको लेना योग्य नहीं है।

२ तस्मिन् तोकं तनयं आदधानाः—उक्त प्रकारके श्रेष्ठ सुखदायक कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको प्रवीण बनायेंगे। हम सुशिक्षा द्वारा अपने बालबच्चोंको उत्तम कर्मोंमें ही प्रवृत्त करेंगे।

३ तुरासः देव-हेळनं कर्म मा— हम सत्वर कर्म करनेकी गडबडमें देवोंको बुरा लगने योग्य कुकर्म कभी न करें। प्रत्युत देवोंको संतोष होने योग्य कर्म ही करते रहें।

[९] (५११) (होत्राभिः वेदिं अव यजेत) जो वाणीसे वेदीपर बैठकर भी स्तुति न करे, यजन न करे, (सः) वह (वरुणध्रुतः काः रिपः चित्) वरुण देवसे हिंसित होकर किनकिन दुर्गतियोंको प्राप्त होता है ? अर्थात् उसकी बुरी अवस्था हो जाती है। (अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु) अर्यमा शत्रुओंसे हमें दूर रखे। हे (वृषणौ) बलवान् मित्रा-वरुणो ! (सुदासे उरुं लोकं) उत्तम दान करनेवालेके लिये उत्तम स्थान दो। उसकी योग्यता उच्च कर दो।

१ यः वेदिं अवयजेत सः रिपः चित्— जो यज्ञ नहीं करता, हवन या स्तुति प्रार्थना नहीं करता उसकी दुर्गति होती है। अतः मनुष्य ईश्वरकी उपासना अवश्य करे।

२ अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु— अर्यमा शत्रुओंको हमसे दूर रखे अथवा हमें शत्रुओंसे दूर रखे। शत्रुका आक्रमण हमपर न हो।

३ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दान देनेवालेके लिये विस्तृत श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो।

[१०] (५१२) (एषां समृतिः सस्वर् चित् हि त्वेषी) इन वीरोंकी संगति गुप्त रहती है और तेजस्वी भी होती है। ये (अपीच्येन सहसा सहन्ते) गुप्त बलसे शत्रुको पराभूत करते हैं। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (युष्मत् भिया रेजमानाः) तुम्हारे भयसे शत्रु कांपने लगते हैं। (दक्षस्य महिना चित् नः मृळत) अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो।

११ यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ५१३

१२ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५१४

(६१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ५१५

१ एषां समृतिः सत्वा त्वेषी च— इन वीरोंके साथ होनेवाली मित्रता गुप्त रहती है, स्थायी होती है और तेजस्वी भी होती है। मित्रता, संगति, स्थायी, परस्परका संरक्षण करनेवाली और तेजस्वी होनी चाहिये।

२ अपीव्येन सहसा सहन्ते— सुरक्षित बलसे वीर शत्रुका पराभव करते हैं। ऐसा बल चाहिये कि जिससे शत्रुका पराभव करना सहज हो जाय।

३ युष्मत् भिया रेजमानाः— वीरोंके भयसे शत्रु कांपते रहें। भयभीत हो जांय।

४ दक्षस्य महिना नः मृळत— अपने बलकी महिमासे वीर हम सबको सुखी करें। शक्तिका उपयोग अच्छी तरह किया तो उससे जो सुरक्षा होती है उससे सुख होता है।

[११] (५१३) (वाजस्य सातौ) अन्नके दानके समय तथा (परमस्य रायः) श्रेष्ठ धनका दान करनेके समय (यः ब्रह्मणे सुमतिं आ यजाते) जो स्तोत्रपाठमें अपनी बुद्धिको लगाता है। उस (मन्युं) मननीय स्तोत्रका (अर्यः मघवानः) कर्म प्रेरक धनवान मित्रादि देवगण (सीक्षन्त) सेवन करते, श्रवण करते हैं। और उनके (उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे) विशाल निवासके लिये उत्तम स्थान बनाते हैं।

जो लोग प्रभुकी उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि शुभ कर्ममें प्रेरित होती है और उससे उसका निवास सुखमय होता है।

[१२] (५१४) हे (देवा) मित्रावरुण देवो! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिये की है। (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) और तुम कल्याण साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित करो।

विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको दूर करना चाहिये। दुर्ग— दुःखमय जीवन। यही दूर करने योग्य है।

[१] (५१५) हे (वरुणा) मित्र और वरुण! (देवयोः वां चक्षुः), आप दोनों देवोंकी आंख जैसा यह (सूर्यः सुप्रतीकं ततन्वान्) सूर्य उत्तम प्रकाशको फैलाता हुआ (उत् एति) उदयको प्राप्त होता है। (यः विश्वा भुवनानि अभि चष्टे) जो सब भुवनोंको देखता है। (सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत) वह मनुष्योंमें रहे मनके भावको जानता है।

१ यहां ' वरुणा ' यह एक ही देवका नाम सामान्य अर्थमें दोनोंके उद्देश्यसे प्रयुक्त किया गया है।

२ मित्र और वरुणका आंख सूर्य है ऐसा यहां (देवयोः वां चक्षुः सूर्यः) कहा है। अर्थात् मित्र तथा वरुणसे यहां सूर्यको छोटा बताया है। मित्रावरुणोंकी आंख-एक इंद्रिय-सूर्य है।

३ सूर्यः विश्वा भुवनानि अभिचष्टे— वह सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है। यह विश्वका निरीक्षण करनेका अधिकारी है।

४ सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत— वह सूर्य मनुष्योंके अन्तःकरणमें जो भाव होता है उसको जानता है। ' मन्युः '- (मनसि भवः) मनका भाव, अन्तःकरणके विचार, उत्साह, स्तोत्र, मननीय विचार।

२ प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे ५१६

३ प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ५१७

४ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ५१८

[२] (५१६) हे मित्रावरुणो ! (वां मन्मानि) आपके मननीय स्तोत्र (सः ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) वह सत्यनिष्ठ अति विद्वान् बहुश्रुत ज्ञानी (प्र इयर्ति) बोलता है। प्रेरित करता है। फैलाता है। (यस्य ब्रह्माणि) जिसके ज्ञानस्तोत्रोंकी (सुक्रतू अवाथः) उत्तम कर्म करनेवाले तुम दोनों सुरक्षा करते हो। तथा (यत्) जिन कर्मोंको (क्रत्वा) करके (शरदः आ पृणैथे) अनेक संवत्सरोंतक परिपूर्णता प्राप्त करते रहते हैं।

मानवधर्म- मनुष्य सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत और विशेष ज्ञानसंपन्न बनें। उत्तम कर्म करें और अपने राष्ट्रीय महाकाव्योंका संरक्षण करें। इन काव्योंके अनुसार शुभ कर्म करके मनुष्य सैंकडों वर्षोंतक अपने आपको पूर्ण बनाते जांय।

१ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत ज्ञानी ' मन्मानि प्र इयर्ति ' -मननीय काव्योंका प्रसार करता है। काव्य करके जगत्में उनको फैलाता है। लोग वे पढें और अपने आचरण सुधारें और श्रेष्ठ बनें।

२ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— उत्तम कर्म करनेवाले वीर इन स्तोत्रों-देव काव्यों-का संरक्षण करते हैं। इन वीरोंसे सुरक्षित हुए ये वीर काव्य राष्ट्रका तारण करते हैं।

३ यत् क्रत्वा शरदः आ पृणैथे— जिसके अनुसार कर्म करके अनेक वर्षोंतक मनुष्य पूर्णता प्राप्त करते रहते हैं।

[३] (५१७) हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (उरोः पृथिव्याः) इस अति विस्तीर्ण पृथिवीके चारों ओर पहुंचे हो और (ऋष्वात् बृहतः दिवः प्र) अपनी गतिसे बडे द्युलोकतक भी पहुंचे हो, इससे तुम बडे हो। हे (सु-दानू) उत्तम दान देनेवाले वीर ! तुम (ओषधीषु विक्षु स्पशः दधाथे) औषधियों और प्रजाओंमें रूपका धारण करते हो, उनमें सौंदर्य रखते हो। और (ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा) सत्य मार्गसे आनेवालोंकी आंखे बंद न करते हुए अर्थात् अविश्रांत रीतिसे सतत संरक्षण करते हो।

मित्र और वरुण इस विस्तीर्ण पृथिवीसे और बडे द्युलोकसे भी विशाल हैं, बडे हैं, सर्वत्र पहुंचे हैं।

' सु-दानू '-ये उत्तम दाता हैं, उदार हैं, विशाल अन्तः-करणवाले हैं।

ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— सत्यमार्गसे जो जाते हैं उनका सतत संरक्षण करते हैं। सदाचारियोंका संरक्षण करना चाहिये। राष्ट्रमें सदाचारियोंकी संख्या बढानी चाहिये और उनको संरक्षण मिलना चाहिये।

[४] (५१८) (मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस) मित्र और वरुणके तेजस्वी स्थानका वर्णन करो। इनका (शुष्मः) बल (महित्वा रोदसी बद्बधे) अपने महत्वसे द्युलोक और पृथिवीको बांधता है, अपने स्थानमें रख देता है। (अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्) यज्ञ न करनेवालोंके महिने पुत्र-रहित होकर चले जांय। (यज्ञ-मन्मा वृजनं प्र तिराते) यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा होता है वे अपने बलको विशेष बढाते रहते हैं।

१ मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस— मित्र और वरुणके तेजस्वी धामका वर्णन करो। मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहार करनेवालोंकी स्तुति गाओ। इनके काव्योंका गान करो।

५ अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम्।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ५१९

६ समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ५२०

१ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्बधे— इनका बल अपने महत्त्वसे आकाशसे पृथिवीतक फैलता है। इस विश्वमें उनका यश फैलता है कि जो मित्रभाव तथा वरिष्ठताका भाव बढाते हैं।

१ अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने अथवा वर्ष वीरता हीन अवस्थामें जांय। उनका संरक्षण करनेके लिये कोई वीर नहीं मिलेंगे। क्योंकि यज्ञसे वीर पूजा और संगठन होता है। इसलिये यज्ञकर्ताके पास वीर पूजे जाते हैं और संगठन भी अच्छा बढता है। इसलिये यज्ञकर्ताका संरक्षण करनेके लिये उनके पास वीर बढते हैं। वे सुरक्षित होते हैं और उनको वीर पुत्र भी होते हैं। पर जो यज्ञ नहीं करते, जो स्वार्थी हैं उनकी अधोगति होती है।

४ यज्ञमन्मा वृजनं प्र तिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा रहता है वे अपना बल बढाते हैं। उनके पास वीर होते हैं, वे सुरक्षित होकर उनको उत्तम वीर संतान भी होती है।

' वृजनं '—बल, जो शत्रुओंका वर्जन करता है, शत्रुओंको दूर रखता है। बल, धन, सामर्थ्य।

[५] (५१९) हे (अमूरा विश्वा वृषणौ) **विशेष ज्ञानी व्यापक और बलवान देवो! (त्वां इमा) आपके ये स्तोत्र हैं, (यासु चित्रं न ददृशे) जिनमें आश्चर्य नहीं दीखता और (न यक्षं) न इनमें तुम्हारा सत्कार दीखता है। क्योंकि यह वर्णन यथार्थसे भी कम हो रहा है, तुम्हारी महिमा इससे बहुत अधिक है। (जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते) जनोंके द्रोही शत्रुही असत्य प्रशंसा करते हैं। (त्वां निण्यानि अचिते न अभूवन्) आपके गुप्त पराक्रम भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते। वे भी ज्ञान बढाते हैं।**

मानवधर्म- मनुष्य अपना ज्ञान बढावें, बल बढावें और सर्वत्र जाकर निरीक्षण करें, सुरक्षा करें और वहां ज्ञानका प्रचार करें। लोगोंने कितनी भी प्रशंसा और पूजा की तो वह इनके महत्त्वकी दृष्टीसे कम ही हुई है ऐसा प्रतीत होने योग्य अपना महत्त्व बढावें। इतने श्रेष्ठ बनें। जनताके वे शत्रु हैं कि जो असत्यकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये कोई असत्य स्तुति न करे। असत्य प्रशंसा यह द्रोह है ऐसा मानें। कोई कार्य अज्ञान बढानेवाला न हो, प्रत्येक प्रयत्नसे ज्ञानकी वृद्धि होती रहे।

१ अमूरा विश्वा वृषणौ— ये मित्र और वरुण अमूढ हैं, सब स्थानमें जानेवाले हैं और सामर्थ्यवान हैं। इस तरह मनुष्योंको ज्ञानसंपन्न, सर्वत्र प्रवेश करनेवाले और बलवान होना चाहिये।

२ वां इमा यासु चित्रं न ददृशे न यक्षं— इनकी इस स्तुतिमें न विलक्षणता है और न इनकी विशेष पूजा ही है। क्योंकि इनका सामर्थ्य इतना महान है कि कितनी भी हम इनकी प्रशंसा करें वह न्यून ही होगी और हमसे इनका सत्कार कम ही होगा। मनुष्योंको उचित है कि वे अपना सामर्थ्य इतना बढावें कि लोगोंने की हुई प्रशंसा तथा पूजा कम ही प्रतीत हो।

३ जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते— जनताके द्रोही जो होते हैं, वे ही असत्य स्तुति करते हैं। अपने लाभके लिये अयोग्यकी भी प्रशंसा करते हैं वे समाजके शत्रु हैं।

४ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे किये गुप्त या छोटे कृत्य भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते, अर्थात् ज्ञान बढानेवाले होते हैं। यही आदेश है कि मनुष्य प्रयत्न करे और अपने प्रत्येक कृत्यसे, प्रत्येक कर्मसे ज्ञानकी वृद्धी हो ऐसा करे।

[६] (५२०) हे (मित्रावरुण) **मित्र और वरुण! (त्वां यज्ञं नमोभिः सं महयं उ) आपके यज्ञका नमस्कारोंसे हम महत्त्व बढाते हैं। इसलिये (सबाधः वां हुवे) बाधित होकर आपको मैं**

७ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५२१

(६२) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-३ सूर्यः; ४-६ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ५२२

बुलाता हूँ । बाधा दूर करनेके लिये बुलाता हूं । (वां ऋचसे) अपनी प्रशंसा करनेके लिये (इमानि नवानि मन्मानि कृतानि) ये नवीन मननीय स्तोत्र किये हैं । ये (ब्रह्म जुजुषन्) स्तोत्र आपको प्रसन्न करें ।

मित्र और वरुण जो इस विश्व रचना और धारणाका महान यज्ञ कर रहे हैं, उसको जानना और लोगोंमें प्रकट करना चाहिये । और लोगोंको प्रेरित करना चाहिये कि वे उस तरहके यज्ञ करें और महत्त्वको प्राप्त करें जैसा महत्त्व इनको प्राप्त हुआ है ।

अपनी बाधा दूर करनेके लिये प्रभुकी उपासना करनी चाहिये । इस उपासनासे ही प्रभुकी प्रसन्नता होती है और लोगोंकी-उपासकोंकी भी उन्नति होती है ।

[७] (५२१) यह मंत्र ५१४ के स्थानपर है । वहीं पाठक इसका अर्थ देखें ।

[१] (५२२) (सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) यह सूर्य बडे विशाल तेजोंका, ऊपर होता हुआ, आश्रय करता है । (मानुषाणां विश्वा जनिम) मनुष्योंके सब जीवनोंको वह देखता है, । (दिवा रोचमानः समः ददृशे) दिनके समय प्रकाशता हुआ एक जैसा सबको दीखता है । वह सूर्य (क्रत्वा) सबका निर्माता (कृतः) परमात्माने स्वयं निर्माण किया है, वह (कर्तृभिः सुकृतः भूत्) यज्ञ कर्ताओंद्वारा सत्कारित हुआ है ।

मानवधर्म- मनुष्यका उदय होनेके बाद उसका तेज बढता रहे, उसको श्रेष्ठ, कनिष्ठ मनुष्योंकी परीक्षा करनेकी शक्ति हो, उसका बर्ताव सबके साथ समान हो, तथा वह बडे बडे पुरुषार्थ करनेवाला बने और अनेक कुशल पुरुषोंके साथ रहकर बडे विशाल कर्म उत्तम प्रकार निभानेवाला बने ।

१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्—सूर्य उदय होकर जैसा जैसा ऊपर चढता है, वैसा वैसा उसका तेज बढता जाता है । इसी तरह मनुष्य भी विद्या समाप्त करके जब जगत्के व्यवहारमें उदयको प्राप्त होता है, तब उसका भी प्रकाश बढता है । इस तरह मनुष्य ऊपर चढे और अधिक तेजस्वी होता जाय ।

२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम-- सूर्य मनुष्योंके सब प्रकारके जीवनोंको देखता है । इसी तरह राष्ट्रका निरीक्षण करनेवाला अधिकारी लोगोंके जीवन चारित्र्यका निरीक्षण करे ।

३ दिवा रोचमानः समः ददृशे— दिनके समय प्रकाशनेवाला सूर्य सबको समान रूपसे तेजस्वी दिखाई देता है । इसी तरह मनुष्य अधिकारपर चढा हुआ सबके साथ समान रूपसे बर्ते, पक्षपात न करे ।

४ क्रत्वा कृतः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— यह सूर्य सबका निर्माण करनेवाला है, संस्कारोंसे प्रभुने इसको बनाया है, पश्चात् यह अनेक कर्ताओंको अपने साथ रखता है और उत्तम कर्म करनेवाला बनता है । इसी तरह मनुष्य भी अच्छे (क्रत्वा) कर्म करनेवाला हो, (कृतः) विद्याके तथा सदाचारके संस्कारोंसे सुसंस्कृत हुआ हो, पश्चात् (कर्तृभिः सुकृतः) अनेक कार्य-निपुण कर्ताओंके साथ शुभ कर्मोंको करनेवाला बने । इस तरह मनुष्यकी श्रेष्ठ अवस्था होती है ।

इस मन्त्रमें सूर्यका वर्णन है, उस वर्णनको मनुष्यके जीवनमें घटानेसे मनुष्यकी उन्नति किस तरह होती है इसका ज्ञान होता है ।

मनुष्य (क्रत्वा = कृतिवान्) कुशलतासे कर्म करनेमें समर्थ होना चाहिये । वह (कृतः) बनाया जाना चाहिये, राष्ट्रकी शिक्षा प्रणालीमें उत्तम संस्कारोंसे वह संपन्न होना चाहिये । और इसके पश्चात् उसने अपने साथ (कर्तृभिः सुकृतः) अनेक कर्म कुशल लोगोंको इकट्ठा करके अनेकानेक बडे बडे विशाल क्षेत्रके

२ स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ५२३

३ वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ५२४

४ द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ५२५

५ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ५२६

कार्य करने चाहिये । जैसा जैसा उसका उदय होता जायगा वैसा वैसा उसका तेज बढता जाना चाहिये । उसको मनुष्योंकी परीक्षा करनेकी शक्ति चाहिये । उसका व्यवहार सबके साथ समान चाहिये । छल, कपट, पक्षपात आदिसे वह दूर रहना चाहिये ।

[२] (५२३) हे सूर्य ! (सः नः प्रति पुरः) वह तुम हमारे सामने (एभिः स्तोमेभिः) इन स्तोत्रोंसे तथा (एतशेभिः एवैः) गमनशील अश्वोंसे (उत् गाः) ऊपर चढ और (नः) हमारे संबन्धमें मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्निके पास (अनागसः प्र वोचः) निष्पाप भावकी घोषणा करो ।

सूर्य उदय होकर देखे कि हम निष्पाप हैं, ऐसा देखकर हम निष्पाप हैं ऐसी घोषणा करे ।

[३] (५२४) (शु-रुधः ऋतावानः) शोकके दुःखको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ वरुण मित्र और अग्नि ये देव (नः सहस्रं विरदन्तु) हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । तथा (चन्द्राः नः उपमं अर्कं आयच्छन्तु) वे आल्हाददायक देव हमें स्तुत्य और प्रशंसनीय धन दें । तथा (स्तवानाः नः कामं पूपुरन्तु) स्तुति करनेपर हमारी कामनाओंको पूर्ण करें ।

१ 'शु-रुधः'—शोकके कारणको दूर करनेवाले, दुःखको दूर करनेवाले तथा 'ऋतावानः'—सत्यनिष्ठ, सत्य मार्गसे जानेवाले ये देव हैं । मनुष्य उनके सदृश बनें अर्थात् वे शोक दुःख दूर करनेका कार्य करें और सत्यमार्गसे जांय । 'नः सहस्रं वि रदन्तु'—हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । जगत्में धन अनेक प्रकारका है, घर, पुत्र, मित्र, पैसा, सुख-साधन, शक्ति, संस्कारसंपन्न मन आदि अनेक प्रकारका धन है । वह हमें मिले ।

२ चन्द्राः उपमं अर्कं नः आयच्छन्तु—आनन्द देनेवाले हमें उत्तम पूजनीय धन दें । हमें धन चाहिये वह ऐसा हो कि जो प्रशंसनीय हो और सत्कार करने योग्य हो ।

३ नः कामं पूपुरन्तु—हमारी कामनाको पूर्ण करें । हमारी इच्छानुसार हमें सुख प्राप्त हों ।

[४] (५२५) हे (अदिते ऋष्वे द्यावाभूमी) अखंडनीय और विशाल द्यु और भूलोको ! (नः त्रासीथां) हमारा संरक्षण करो । (ये सुजनिमानः वां जज्ञुः) जो उत्तम कुलीन हम हैं वे तुम्हें जानते हैं । हम (वरुणस्य हेळे मा भूम) वरुणके क्रोधमें न जांय तथा (वायोः मा) वायुके क्रोधमें न जांय और (नृणां) मनुष्योंके क्रोधमें भी हम न जांय, (प्रियतमस्य मित्रस्य मा) प्रिय मित्रके क्रोधमें न जांय । अर्थात् इनका क्रोध होनेयोग्य बुरा आचरण हमसे न हो ।

[५] (५२६) हे मित्रवरुणो ! आप अपने (बाहवा प्र सिसृतं) बाहुओंको फैलाओ । (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवन के लिये (नः गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं) हमारी गायें जानेके मार्गको जलसे सिंचन करो । (नः जने आ श्रवयतं) हमें लोगोंमें कीर्तिमान बनाओ । हे (युवाना) तरुणो ! (मे इमा हवा श्रुतं) मेरे इन स्तोत्रोंको सुनो ।

६ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५१७

(६१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-४ सूर्यः, ५ सूर्य-मित्रावरुणाः, ६ मित्रावरुणौ अर्यमा च । त्रिष्टुप् ।

१ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ५१८

२ उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ५१९

मानवधर्म- बहुत दान देते रहो। अपने दीर्घ जीवनके लिये गौको उत्तम जल और हरा घास दो, गौकी पालना करके गोदुग्ध और घृतका सेवन करो और ऐसा उत्तम आचरण करो कि जिससे जगत्‌में यश फैले ।

१ बाहवा प्र सिसृतं— तुम अपने बाहुओंको फैलाओ और बहुत दान दो ।

२ जीवसे गव्यूर्ति घृतेन आ उक्षतं— दीर्घ जीवनके लिये गायोंके आनेजानेके मार्गोंको जलसे सिंचन करो । गौओंको भरपूर शुद्ध जल तथा हरा घास मिले ऐसा करो। गौके दूध और घीके भरपूर मिलनेसे मनुष्यकी आयु बढती है । दही और छाछके पीनेसे भी आयु बढ जाती है ।

३ जने नः आश्रवयतं— लोगोंमें हमारी कीर्ति फैले ।

[६] (५१७) मित्र वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिये योग्य श्रेष्ठ धन दें। (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिये सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

१ त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु— अपने पुत्र-पौत्रोंके लिये श्रेष्ठ धन रखो। स्वयं अपने धनका विनाश न करो, अपने बाल-बच्चोंकी पालनाके लिये भी उसे रखो। 'वरिवः' - श्रेष्ठ धन, उत्तमोत्तम धन ।

२ नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु— हमारे सब प्रगति करनेके मार्ग सुगम हों । हम सहजहीसे प्रगति कर सकें ऐसे वे मार्ग हमारे लिये सुगम हों ।

[१] (५१८) (सूर्यः सुभगः) यह सूर्य उत्तम भाग्यसे संपन्न है (विश्वचक्षाः) सबका निरीक्षण करनेवाला (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्योंके लिये समान (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः देवः) मित्र और वरुणकी आंख जैसा यह देव (यः चर्म इव तमांसि समविव्यक्) जो चमडोंकी तरह अन्धकारोंको समेटता है वह (उत् उ एति) उदय हो रहा है।

सूर्य भाग्यवान्, ऐश्वर्यवान है, सब विश्वका निरीक्षक है, सब मनुष्योंके साथ समान रीतिसे बर्तनेवाला है, मित्र वरुणोंकी आंख जैसा है । यह सूर्य देव जैसे बिछानेके चमडे लपेट कर अलग रखते हैं, उस तरह सब अन्धकारको यह समेट लेता, हटा देता है । बिस्तरा लपेटनेकी, चमडे लपेटनेकी काव्यमय उपमा यहां अन्धकारका आवरण दूर करनेके लिये दी है ।

[२] (५१९) (जनानां प्रसविता) सब लोगोंका प्रेरक (महान् केतुः) बडे ध्वजके समान सबको ज्ञान देनेवाला (अर्णवः) जीवन दाता (सूर्यस्य) यह सूर्य (उत् उ एति) उदयको प्राप्त होता है । (समानं चक्रं परि आविवृत्सन्) सबके लिये एकही कालचक्रको घुमाता हुआ, (यत् धूर्षु युक्तः एतशः वहति) जिस चक्रको धुरामें जोता हुआ अश्व चलाता है ।

सूर्य (जनानां प्रसविता) सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है । दिनका प्रकाश होते ही ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना, यज्ञ, याग आदि अनेक विध सत्कर्म शुरू होते हैं । अन्यान्य विद्याध्ययन आदि भी सत्कर्म सूर्योदय होते ही शुरू होते हैं । जबतक रात्री रहती है तबतक निशाचर, चोर, डाकू आदि दुष्टोंके बुरे

३	विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।	
	एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम	५३०
४	दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।	
	नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि	५३१
५	यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।	
	प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः	५३२

कर्म चलते हैं। सूर्य उदय होते ही वे बंद होते और अच्छे कर्म शुरू होते हैं।

महान् भगवा ध्वज

इसलिये कहा है कि यह सत्कर्मका सूचक (महान् केतुः) बडा भारी ध्वज है। यह सूर्योदयके समयका सूर्य यदि ध्वज है तो यह निःसंदेह ही भगवा ध्वज है। सूर्योदयके सूर्यका रंग भगवा होता है।

यह '**अर्णवः**' जलनिधि है। जीवनका निधि ही यह सूर्य है। सब स्थिरचर जगत्का यह आत्मा है। यही सबका जीवन दाता है। यह '**उदेति**' उदयको प्राप्त होता है।

१ 'समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्' —एक ही कालचक्र सबके लिये समान रूपसे वह चलाता है। इसलिये उसको 'एक चक्र रथ' कहते हैं। सूर्यका कालचक्र सबके लिये एक जैसा है। इसका सूचक यह एक चक्र रथ है।

२ 'धूर्षु युक्तः एतशः वहति' —धुरामें जोडा घोडा इसको ढोता है। यहां 'धूर्षु' अनेक धुराओंमें 'एतशः' एक घोडा जोता है ऐसा लिखा है। पर यह असंभव है। इसलिये अनेक घोडे जोते हैं ऐसा मानना युक्त है। 'सप्ताश्व' इसका नाम है। सात घोडे सूर्यके रथको जोते हैं ऐसा वर्णन अन्यत्र है। कई स्थानोंपर एक घोडा जोता है ऐसा भी है।

सूर्यका आदर्श मनुष्यके सामने है। मनुष्य अन्य जनोंमें सत्कर्मकी प्रेरणा करे, शुभ कर्मका सूचक ध्वज जैसा उनके प्रमुख स्थानमें रहे, सबके लिये एक ही रूपसे रहे, छल, कपट न करे, पक्षपात न करे।

[३] (५३०) यह (विभ्राजमानः उषसां उपस्थात्) विशेष प्रकाशता हुआ सूर्य उषाओंके सामने (रेभैः अनुमद्यमानः उत् एति) स्तोत्र-पाठकोंके स्तोत्रोंसे आनन्द प्रसन्न होता हुआ उदयको प्राप्त होता है। (एषः देवः सविता मे चच्छन्द) यह सविता देव मेरी कामनाकी पूर्ति करता है। (यः समानं धाम न प्रमिनाति) जो अपने समान तेजस्वी स्थानको संकुचित नहीं करता।

सूर्य उदय होनेके समय उपासक लोग वैदिक स्तोत्र गाते हैं। उसके पश्चात् सूर्यका उदय होता है। इस उदयके समय गानेका यह स्तोत्र है। यह सविता देव सबको आनन्द प्रसन्न करता है। इसका (धाम समानं) स्थान सब मानवोंके लिये समान है। इस सूर्यमें किसीका पक्षपात नहीं है। यह अपना प्रकाश किसीके लिये अधिक और किसीके लिये कम नहीं करता, सब पर समानतया समान प्रकाश डालता है।

[४] (५३१) यह सूर्य (दिवः रुक्मः उरुचक्षाः) द्युलोकको शोभा देनेवाला, विशेष तेजस्वी (दूरे अर्थः) दूर विराजमान, (तरणिः भ्राजमानः) तारणकर्ता और तेजस्वी (उत एति) उदित होता है। (नूनं) यह निःसंदेह है कि (सूर्येण प्रसूताः जनाः) सूर्यसे प्रेरित हुए लोग अपने प्राप्तव्य (अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्) अर्थोंको प्राप्त करके उनसे कर्मोंको करते हैं।

सूर्य जैसा द्युलोकका अलंकार है वैसा ही मनुष्य अपने समाजका अलंकार बने। यह दूर रहकर भी अर्थ सिद्ध करता है, तारण करता तेजस्वी होता है, इसी तरह मनुष्य योग्य मार्गसे अपने अर्थकी सिद्धि करे, अपने राष्ट्रका तारण करे और सबको प्रकाश देता रहे, मनुष्य सूर्यको देखकर उनके गुण अपने अन्दर ढाले और अर्थोंको प्राप्त करके ऐसे कर्म करे कि जिनका परिणाम सब लोगोंपर हो सकता है।

[५] (५३२) (यत्र अमृताः अस्मै गातुं चक्रुः) जिस स्थानमें देवोंने इस सूर्यके लिये मार्ग बनाया

६ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५३३

(६४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ५३४

२ आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ५३५

है। वह (पाथः) मार्ग (श्येनः न दीयन्) शीघ्रगामी श्येनकी तरह अन्तरिक्षमेंसे (अनु एति) जाता है। हे मित्र और वरुण ! (सूरे उदिते सति) सूर्यका उदय होनेपर (वां) तुम्हारी (नमोभिः उत हव्यैः) नमस्कारों और हवन द्रव्योंसे (प्रति विधेम) हम परिचर्या करेंगे।

[६] (५३३) यह मंत्र ५२७ के स्थानपर है। पाठक इसे वहां देखें और अर्थ जानें।

[१] (५३४) (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) तुम दोनों द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीमें रहते हो, (वां घृतस्य निर्णिजः प्र ददिरन्) तुम दोनों जलके रूपको बनाते हो। जल तुमने बनाया है। (नः हव्यं) हमारे हव्यका (मित्रः) मित्र (सुजातः अर्यमा) उत्तम कुलमें जन्मा अर्यमा और (सुक्षत्रः राजा वरुणः जुषन्त) उत्तम क्षात्र बलसे युक्त राजा वरुण सेवन करें।

ये मित्र तथा वरुण द्युलोक अन्तरिक्ष तथा पृथिवीपर रहते हैं, तीनो लोकोंमें व्यापते हैं। ये दोनों (**घृतस्य निर्णिजः प्रददिरन्**) जलको रूपवान बनाते हैं। जल नेत्रसे दिखाई देता है यह इनके कारण है। जल पहिले वायु रूप था। मित्र और वरुण ये दो वायु हैं, वे अग्निके समक्ष मिलते हैं और जलको प्रकट करते हैं। वेदमें अन्यत्र भी कहा है—

मित्रं हुवे पूत दक्षं वरुणं च रिशादसं ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ (ऋ० १।२।७)

" बलवान मित्र वायु और शत्रुनाशक वरुण वायुको (हुवे) मैं लेता हूं, परस्परका मेल करता हूं, ऐसा करनेसे ये दोनों (घृत-अचीं धियं साधन्ता) जल उत्पन्न करनेका कर्म सिद्ध करते हैं। "

इस तरह मित्र और वरुणोंका कर्म जल निर्माण करना है। विज्ञान शास्त्री इनको दो वायु कहते हैं। वरुण प्राण वायु और मित्र जलज वायु है। वैज्ञानिक इसका अधिक विचार करके निर्णय करें।

१ सुजातः अर्यमा— यहां अर्यमाको ' सुजात ' अर्थात् उत्तम कुलमें उत्पन्न कहा है। श्रेष्ठ कौन है और कनिष्ठ कौन है इसका निर्णय अर्यमा करता है। (अर्यं मिमीते इति अर्यमा) यह न्यायाधीशका कार्य है। न्यायाधीश होनेके लिये विद्या ज्ञानके साथ कुलीन होना भी आवश्यक है। ' सुजात ' ही न्यायाधीश बनें, कोई ' बद् जात ' न बने यह इसका आशय है।

१ सुक्षत्र राजा वरुणः—वरुण राजा उत्तम क्षात्र बलसे युक्त चाहिये। जो उत्तम क्षात्रबलशाली न होगा वह राजाके कर्तव्य ठीक तरह नहीं निभा सकेगा।

[२] (५३५) हे (महः ऋतस्य गोपा राजाना) बडे सत्यके पालक राजा (सिन्धुपती क्षत्रिया) नदियोंके पालनकर्ता और क्षत्रियो ! (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ। हे (जीरदानू मित्रा-वरुणा) शीघ्र दान देनेवाले मित्र वरुणो ! तुम (नः इळां) हमें अन्न दो (उत वृष्टिं) और वृष्टिको भी (दिवः अव इन्वतं) द्युलोकसे नीचे प्रेरित करो।

राजाके गुण इस मंत्रमें वर्णन किये हैं— (राजा ऋतस्य गोपा) राजा सत्यका रक्षक होना चाहिये, शुभ कर्मोंका संरक्षक राजा हो। (सिन्धुपती) नदियोंका पालक राजा हो। नदियोंके जलका वह संरक्षण करे और उस जलका उपयोग प्रजाजनोंको

३ मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ५३६

४ यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ५३७

५ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५३८

होता रहे ऐसा प्रबंध वह करे। (क्षत्रियः) क्षत्रिय हो, क्षात्र बलसे युक्त हो, शूर वीर हो, (क्षतात् त्रायते) प्रजाका दुःखसे संरक्षण करे। प्रजाको (इळां) पर्याप्त अन्न देवे। ये गुण राजाके हैं। उत्तम राजा इन गुणोंसे युक्त होना चाहिये।

[३] (५३६) मित्र वरुण और (अर्यः) अर्यमा ये तीनों देव (नः तत्) हमें वहां सुखके स्थानमें (साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु) उत्तम साधनोंसे युक्त मार्गोंसे पहुंचा दें। तथा (नः सुदासे) हमारा उत्तम दाताके पास (तथा ब्रवत्) वैसा वर्णन करें कि (यथा आत् अरिः) जैसा श्रेष्ठ पुरुष करता है। (देव-गोपाः इषा सह मदेम) देवोंसे सुरक्षित हुए हम अन्नके द्वारा हम सब साथ साथ रहकर आनंदित होते रहेंगे।

१ **साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु**— उत्तम साधन मार्ग हों, उन्नतिको पहुंचानेवाले मार्ग शुद्ध हों।

२ **देवगोपाः इषा सह मदेम**— देवोंसे सुरक्षित होकर अन्नसे हम सब साथ साथ रहकर आनंदित हों।

[४] (५३७) हे मित्र और वरुण! (यः वां एतं गर्तं मनसा तक्षत्) जो आपके इस रथको मनसे निर्माण करता है, वह (ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत्) उच्च धारण शक्ति निर्माण करता और (धारयत् च) उसका धारण भी करता है। हे (राजाना) राजाओ! (घृतेन उक्षेथां) जलसे सिंचन करो (ता) वे आप दोनों (सुक्षितीः तर्पयेथां) सुन्दर रहनेके स्थान देकर सबको प्रसन्न करो।

१ **मनसा गर्तं तक्षत्**— पहिले मनसे रथ आदिकी निर्मितिका विचार करना होता है। मनमें उसका ढांचा कल्पनासे बनाया जाता है, पश्चात् वह कागजपर दर्शाया जाता है। पश्चात् वह लकडीसे बनाया जाता है।

२ **ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्**— उच्च धैर्यकी स्थिति करना और उसका धारण करना। **धृति**— धैर्य, शौर्य, वीर्यकी कृति।

३ **ता राजाना सुक्षितीः तर्पयेथां**— राजाओंको प्रजाका निवास प्रथम उत्तम होनेयोग्य प्रबंध करना चाहिये और उनकी तृप्ति होनेयोग्य अन्न व्यवस्था भी करनी चाहिये।

[५] (५३८) हे मित्र वरुण! हे वायो! (तुभ्यं) आपके लिये (एषः शुक्रः सोमः न स्तोमः) यह बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र (अयामि) किया है। (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो, (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करनेकी बुद्धिकी जागृति करो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो।

यहां 'वायु' पद 'अर्यमा' का बोध करता है। इस समय तक मित्र वरुणके साथ अर्यमा आया है। इस कारण यहां का वायु भी अर्यमाका बोधक होगा।

१ **धियः अविष्टं**— बुद्धियोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। प्रजाओंकी बुद्धि सुरक्षित रहे, तथा उनके शुभ कर्म भी सुरक्षित रहें।

२ **पुरंधीः जिगृतं**— (पुरं धारयति) नगरका धारण करनेकी बुद्धिकी प्रशंसा गाओ। जिनके अन्दर नगरका धारण

(६५) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
यथोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ५३९

२ ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ५४०

३ ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ५४१

४ आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ५४२

संरक्षण और उन्नयन करनेकी बुद्धि हो उनका वर्णन करना चाहिये ।

[१] (५३९) (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं पूतदक्षं वरुणं) मित्र तथा पवित्र बलवाले वरुणकी (वां सूक्तैः प्रति हुवे) आपके सूक्तोंसे उपासना करता हूं। (ययोः अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं) जिनका अक्षय और श्रेष्ठ बल (आचिता यामन्) प्राप्त होनेपर वह (विश्वस्य जिगत्नु) सबका विजय करनेवाला होता है।

१ ' अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु— अक्षय और श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करता है । जिसके पास ऐसा बल होगा वह विश्व विजयी होगा ।

२ ' पूत दक्षं ' —पवित्र बल प्राप्त करना चाहिये। जिस बलसे पवित्र कर्म किये जाते हैं वह बल पवित्र होता है ।

[२] (५४०) (ता हि देवानां असुरा) वे दोनों देवोंमें अधिक बलवाले हैं। (तौ अर्या) वे दोनों श्रेष्ठ हैं। (ता नः क्षिती ऊर्जयन्तीः करतं) वे दोनों हमारी प्रजाको बढाते हैं। हे मित्र और वरुण! (वयं वां अश्याम) हम आप दोनोंको प्राप्त करते हैं। (यत्र द्यावा च) जिससे द्यु और पृथिवी (अहा च) दिन रात (पीपयन्) हमारी वृद्धि करते रहें।

देवानां असुरा अर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— देवोंमें अधिक बलवान् श्रेष्ठ वीर संतानोंको बलशाली निर्माण करते हैं। देव विजयी होते हैं, उनमें अधिक बलवान् वीर हों और स्वामी अधिकारी बनें तथा वे अपनी प्रजाको अधिक बलवान् बना दें ।

[३] (५४१) (तौ भूरिपाशौ) वे दोनों वीर बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेवाले हैं। (अनृतस्य सेतू) सेतु जैसे असत्यके पार करनेवाले हैं। वे (मर्त्याय रिपवे दुरत्येतू) मर्त्य शत्रुके लिये आक्रमण करनेके लिये अशक्य हैं। हे मित्रा वरुणो ! हम (वां ऋतस्य पथा) आपके सत्य मार्गसे, (नावा अपः न) नौकासे नदियोंके पार होनेके समान (दुरिता तरेम) दुःखोंको पार करेंगे।

१ भूरि पाशाः— बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेकी विद्या प्राप्त करनी चाहिये । अपने पास बहुत पाश रखने चाहिये ।

२ अनृतस्य सेतुः— असत्यसे पार करनेवाला सेतु जैसा बनना उचित है । असत्यमें फंसना उचित नहीं है ।

३ मर्त्याय रिपवे दुरत्येतुः — मरनेवाले शत्रुका आक्रमण रोकनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये । शत्रुका आक्रमण ही न हो इतनी शक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये ।

४ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें । सत्य मार्गसे जांय और पापोंसे बचें ।

५ नावा अपः न— नौकासे जिस तरह नदियोंके प्रवाहोंके पार होते हैं उस तरह हम दुःखोंके पार हों ।

[४] (५४२) हे मित्र और वरुण ! (नः हव्यजुष्टिं आ) हमारे हवनके स्थानमें आओ । (इळाभिः

५ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५४३

(६६) १९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ, ४-१३ आदित्याः, १४-१६ सूर्यः ।
गायत्री, १०-१५ प्रगाथः = (समा बृहती, विषमा सतोबृहती)
१६ पुर उष्णिक् ।

१	प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः	। नमस्वान् तुविजातयोः	५४४
२	या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा	। असुर्याय प्रमहसा	५४५
३	ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम्	। मित्र साधयतं धियः	५४६
४	यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा	। सुवाति सविता भगः	५४७
५	सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन् त्सुदानवः	। ये नो अंहोऽतिपिप्रति	५४८

घृतैः गव्यूतिं उक्षतं) अन्नों और जलोंसे हमारी गौ चरनेवाली भूमिका सिंचन करो। (वां अत्र वरं प्रति आ) आपको यहीं श्रेष्ठ हवि मिलेगा। (दिव्यस्य चारोः उद्रः जनाय पृणीतं) स्वर्गीय रमणीय जल लोगोंके लिये भरपूर दो।

[५] (५४३) यह मंत्र क्रमाङ्क ५३८ में है। वहीं पाठक इसका अर्थ देखें।

[१] (५४४) (मित्रयोः वरुणयोः) मित्र और वरुण जो कि (तुवि-जातयोः) अनेक बार प्रकट होते हैं उनका (नमस्वान् शूष्यः स्तोमः) अन्नसे युक्त बल बढानेवाला स्तोत्र (नः प्र एतु) हमारे पास आ जावे।

मित्र और वरुणका स्तोत्र बल बढानेवाला है और अन्न देनेवाला है। वह हमें मिले। हमारे कण्ठमें वह रहे जिससे हम अपना अन्न और बल बढावें।

[२] (५४५) (देवाः) देव (सुदक्षा दक्ष-पितरा) उत्तम बलवान्, बलके संरक्षक (प्रमहसा) विशेष शक्तिवाले (असुर्याय धारयन्त) बल प्राप्त करनेके लिये धारण करते हैं। मित्र और वरुणका धारण करते हैं।

१ सुदक्षा— उत्तम बल धारण करना चाहिये,
२ दक्षपितरा— अपने बलका संरक्षण करना चाहिये,
३ प्रमहसा — विशेष महत्त्व प्राप्त करना चाहिये,
४ असुर्याय धारयन्त — अपना बल बढानेका प्रयत्न करना चाहिये। (असुर्य) बल प्राप्त करनेके लिये देवत्वकी धारणा करनी चाहिये।

[३] (५४६) (ता स्तिपाः तनूपाः) वे तुम दोनों घरोंके शरीरोंके रक्षक हो। हे मित्र और वरुण ! (नः जरितॄणां धियः साधयतं) हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल बनाओ।

शरीरों, घरों, नगरों तथा राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिये। इस मंत्रमें शरीरों और घरोंका संरक्षण मित्र तथा वरुण करते हैं ऐसा कहा है। यह उपलक्षण है। इससे विशाल घर और विशाल शरीरकी पालना करनेकी सूचना मिलती है।

' धियः ' (धी) बुद्धि, योजना। बुद्धिपूर्वक किये कर्म सफल हों। कैसे भी किये कर्म सफल होंगे ऐसा नहीं है। योजनापूर्वक किये कर्म ही सफल होंगे।

[४] (५४७) (यत् अद्य सूरे उदिते) जो धन आज सूर्यका उदय होनेके समय हमें अपेक्षित है वह (अनागाः) निष्पाप मित्र, अर्यमा, सविता, भग (सुवाति) हमें देवे।

[५] (५४८) (सः क्षयः सुप्रावीः अस्तु) वह हमारा निवास स्थान उत्तम प्रकारसे सुरक्षित हो। हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवालो ! (नु यामन् प्र) आपका आगमन हमारा रक्षण करे। (ये नः अंहः अति पिप्रति) वे तुम हमें पापसे बचाओ।

६	उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते	५४९
७	प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम्	५५०
८	राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये	५५१
९	ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि	५५२
१०	बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।	
	त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः	५५३

१ क्षयः सुप्रावीः अस्तु— हमारा निवास स्थान अत्यंत सुरक्षित हो। निवास स्थान, अपना घर, नगर, देश, राष्ट्र है। यह सब सुरक्षित होना चाहिये।

२ यामन् प्र आवीः अस्तु— आप वीरोंका आना ही हमारा संरक्षण करनेवाला है। जहां वीर होंगे वहां संरक्षण होगा।

३ नः अंहः अतिपिप्रति— आप वीरोंका आगमन हमारे पापोंको दूर करता है।

[६] (५४९) (ये अदितिः) जो मित्र आदि आदित्य और अदिति ये सब (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) न दबे व्रतके अधिष्ठाता हैं, वे (राजानः महः ईशते) अधिपति बडे धनके भी स्वामी हैं।

ये वीर ऐसे व्रतके प्रवर्तक हैं कि जो किसी शत्रुके द्वारा दबाया नहीं जा सकता। ये ही बडे धनके अधिपति हैं। जिन वीरोंके कर्म शत्रुसे मिटाये नहीं जाते वे ही वीर बडे ऐश्वर्यके स्वामी होते हैं। पर जिनके कर्म उनके शत्रु विनष्ट कर सकते हैं; उनको इस जगत्में ऐश्वर्य प्राप्त होना असंभव है।

[७] (५५०) (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय मित्र वरुण और (रिश-अदसं अर्यमणं वां) शत्रु नाशक अर्यमाकी (प्रति गृणीषे) प्रत्येककी स्तुति गाऊंगा।

[८] (५५१) (हिरण्यया राया) सुवर्णमय धनसे युक्त (इयं मतिः) यह मेरी बुद्धि (अवृकाय शवसे) अहिंसक बलके लिये हो। हे (विप्राः) ज्ञानियो! (इयं मेधसातये) यह मेरी बुद्धि यज्ञको सिद्ध करनेवाली हो।

१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे— सुवर्ण आदि धन जिसके साथ पर्याप्त है, ऐसी यह हमारी बुद्धि हिंसारहित बलके कर्म करनेवाली हो। धन प्राप्त होनेपर कोई भी मनुष्य क्रूर कर्म न करे। घमंड करता हुआ दूसरोंका घात न करे।

२ इयं मतिः हिरण्यया राया मेधसातये— सुवर्ण आदि धनसे युक्त हुई हमारी बुद्धि यज्ञ करनेवाली बने, बुद्धि ज्ञानसे युक्त हुई, धन मिला, तो वह धन यज्ञके लिये अर्पण करना चाहिये।

[९] (५५२) हे देव मित्र तथा वरुण! (सूरिभिः सह ते स्याम) विद्वानोंके साथ हम आपके गुणगान करनेवाले हों। (इषं स्वः च धीमहि) हम अन्न और जल भी प्राप्त करेंगे।

मनुष्योंको उचित है कि वे सदा ज्ञानी विद्वानोंके साथ रहें, श्रेष्ठ वीरोंके काव्य गायें और खानपान प्राप्त करनेके कार्य करें।

[१०] (५५३) (बहवः सूरचक्षसः) बहुत सूर्यके सदृश तेजस्वी (अग्नि जिह्वाः ऋतावृधः) अग्नि जिनकी जिह्वा है ऐसे सत्य मार्गको बढानेवाले मित्रादिक देव वीर (ये) जो (विश्वानि त्रीणि विदथानि) सब तीनों स्थानोंपर (परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्योंसे नियमन करते हैं।

१ परिभूतिभिः धीतिभिः विश्वानि विदथानि येमुः— शत्रुका पराभव करनेके अनेक सामर्थ्योंसे वीर सब युद्ध स्थानोंपर नियमन करते हैं। वीर अपने शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्योंको बढाते हैं। और उनके द्वारा सब युद्धके स्थानोंपर अपना प्रभाव दिखाते हैं। जो वीर अपने अन्दर शत्रुका

स्वाध्याय-मंडल पारडीकी सहायतार्थ चेरिटी शो

श्री पृथ्वी थिएटर्स कृत

‘ आहुति ’

समय -- सुबह १० बजे
ता. -- रविवार ४-२-५१

स्थान—
रॉयल ऑपेरा हाऊस, बम्बई.

वैदिक तत्वज्ञान-प्रचारक संस्था ‘ स्वाध्यायमण्डल ’ की स्थापना सन १९१८ में हुई। पिछले ३२ वर्षोंसे वेद, गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ प्रकाशित कर वैदिक ज्ञान और सभ्यताका विचार और प्रचारका कार्य यह संस्था कर रही है। इस समय वसिष्ठ ऋषिका मुद्रण हो रहा है। सात बडे ऋषियोंका अभी मुद्रण करना है। प्रत्येक ऋषिके मंत्रोंके सविवरण भाषानुवाद सहित मुद्रणके लिये १५ हजार रु० व्यय होता है। एक ऋषिके मन्त्रोंका मुद्रण इस आयसे करनेका संकल्प है।

यह संकल्प आपके उदार सहयोगसे ही पूर्ण हो सकता है। हमें आपके सहयोगकी पूर्ण आशा है। कृपया लौटती डाकसे सूचित करें कि आप अपने इष्टमित्रों सहित कितने टिकिट ले सकेंगे। टिकिटोंके दर निम्नप्रकारसे हैं—

प्रति टिकिट— रु. १०१), ५१), और २५) और १०) ५। कृपया शीघ्र उत्तर दें।

बम्बईमें टिकिट मिलनेके स्थान—

१ शेठ हीरालाल बबलीशा वाकनिस बिल्डिंग, तांबाकाटा बम्बई नं. ३

२ श्री. माधव सातवलेकर, कबूर एस्टेट नं. ३८ मायन बम्बई नं. २२

३ श्री. वीरकर आर्टस फोटोग्राफर्स, ९ मोहन बिल्डिङ्गस गिरगांव बम्बई नं ४

४ श्री. तडित्कान्तजी विद्यालङ्कार, आर्यन को. हा. सोसायटी लि., बॉम्बे, को. ओ. इन्स्यूरन्स बिल्डिंग, दूसरा माला सर. पी. महेता रोड- कोट, बम्बई

५ श्री. वी. पी. भट्ट टे. नं. २१४९६ प्राईम मूवर्स इण्डिया लिमिटेड, देवकरण नानजी बिल्डिंग, दूसरा माला एल्फिन्स्टन सर्कल, कोट, बम्बई

भवदीय
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष— स्वाध्याय-मण्डल

Regd. No. B 1463 .

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)